पुष्प ३ रा

वीर की वाणी में अभिव्यक्त विद्रोह-भाव

कबीर की वाणी में अभिव्यक्त विद्रोह - भाव :-

कबीर को अपने समय के सच्चे विद्रोही कवि कहा जाता है क्योंकि उन्होंने तत्कालीन समाज व्यवस्था में प्रचलित अंधविश्वास, मिथ्याडम्बर, जातिगत भेद-भाव तथा धार्मिक एवं साम्प्रदायिक संकीर्णता का विरोध किया था। कबीर के इन विद्रोही स्वभाव पर विचार करने से पहले हम विद्रोह की परिभाषा क्या है ? उसका स्वरूप कैसा है ? आदि की जानकारी प्राप्त करेंगे।

विद्रोह की परिभाषा :-

हिन्दी शब्दकोशों में विद्रोह शब्द की अनेक परिभाषाएँ मिलती हैं। उनमें से कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार की हैं। -

' मानक हिन्दी कोश' में विद्रोह की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है।

" विद्रोह :- पु [सं. वि द्रुह [वैर करना] + घञ्]

1. किसी के प्रति किया जानेवाला द्रोह अर्थात शत्रुता पूर्ण कार्य।
2. विशेषता राज्य या शासन के प्रति अविश्वास या दुर्भाव उत्पन्न होनेपर उसकी आज्ञा, विधान, आदि

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

के विरुद्ध किया जानेवाला आचरण, और व्यवहार।

3. देश या राज्य में क्रान्ति करने के लिए किया जानेवाला उपद्रव। "(1)

डॉ. श्यामसुंदरदास ने ' हिंदी शब्द सागर ' में विद्रोह की परिभाषा इस प्रकार दी है -

" विद्रोह :- संज्ञा [पु] [सं]

1. किसी के प्रति होनेवाला वह द्वेष या आचरण जिससे उसकी हानि पहुँचे।
2. राज्य में होनेवाला भारी उपद्रव जो राज्य को हानि पहुँचाने या नष्ट करने के उद्देश्य से हो।
3. बलवा/बगावत।"(2)

इन दो परिभाषाओं के अतिरिक्त ' नालन्दा विशाल शब्द सागर ' में विद्रोह की परिभाषा इस प्रकार मिलती है -

" विद्रोह :- संज्ञा पु [सं.]

1. द्वेष।
2. वह भारी उपद्रव जिसका उद्देश्य राज्य को हानि पहुँचाना, उलटना, या नष्ट करना हो।
3. बलवा / बगावत।" (3)

<u>निष्कर्ष</u> :-

उपर्युक्त तीन विद्वानों की परिभाषा को देखने के पश्चात् इन तीनों विद्वानों की परिभाषाएँ विद्रोह शब्द के समान अर्थ को स्पष्ट करती है।

A
11831

कबीर में विद्रोही-भाव:-

साहित्य और समाज एक दूसरे से अलग नहीं किये या सकते। साहित्य समाज पर अवलंबित है, वैसे ही समाज साहित्य द्वारा किये दिशानिर्देश पर अग्रसर होता है। लेकिन फिर भी साहित्यकार अपने युग की साहित्यिक धारा के साथ-साथ चलना अधिक पसन्द करता है। युगीन धारा के विरोध में साहित्य लिखने का लोहा मोल लेने की क्षमता आम साहित्यिकों में नहीं होती। कबीर एक ऐसे साहित्यिक एवं भक्त हैं जिन्होंने साहित्य और भक्ति दोनों का समन्वय करते हुए जनजागरण करते हुए तत्कालीन समाज की उन्नत्ति का बराबर प्रयास किया। इसी लिए तो हिंदी साहित्य के मध्यकाल के अंतर्गत आज सबसे अधिक महत्व कबीर को दिया जाता है। उन्होंने तत्कालीन समाज में प्रचलित धार्मिक रूढियों एवं अंधविश्वासों के प्रति विद्रोह किया। मध्यकाल के अंतर्गत कबीर अकेले ऐसे कवि हैं जिन्होंने जीर्ण परम्पराओं का खुलकर विरोध किया है। कबीर के महत्व का प्रमुख कारण है- उनकी दृढ आस्था निर्भीक व्यक्तित्व और अविचल भक्ति।

कबीर ने अपने समय के जीवन प्रवाह को खुली आँखों से देखा था। वे ' कागज लेखी ' पर नहीं 'आखन देखी ' पर विश्वास करते थे। इसलिए उन्होंने जो कुछ कहा है उसके पीछे उनका अनुभव विद्यमान है।

कबीर के फक्कड व्यक्तित्व एवं विद्रोही भाव के संदर्भ में डॉ. रामचंद्र तिवारी जी लिखते हैं - " वे निर्भिक, स्पष्टवक्ता, विवेकशील और पक्षपात रहित थे। उन्होंने किसी की झूठी खुशामद नहीं की। योगी हो या पण्डित, मुल्ला हो या मौलवी, नबी हो या अवलिया, पीर हो या मुरशिद, शैव हो या शाक्त, हिन्दु हो या मुसलमान उन्होंने सभी दुर्बलताओं पर समान भाव से प्रहार किया। वे सच्चे विद्रोही थे। उनका विद्रोह अंधविश्वास, मिथ्याडम्बर, जातिगत भेद-भाव तथा धार्मिक एवं साम्प्रदायिक

संकीर्णता के विरुद्ध था।" (4)

कबीर सहज जीवन के समर्थक थे और मनुष्यता की एकता में अधिक विश्वास करते थे। उनके मन में गरीब जनता एवं उपेक्षित मानव के प्रति अत्यन्त सहानुभूति थी। शक्ति, सत्ता और वैभव का उन्हें बिल्कुल आकर्षण नहीं था कबीर अपने जीवनकाल में सबकुछ छोडकर सारी वासनाओं और इच्छा - आकांक्षाओं को जलाकर जीवन के पथ पर अग्रसर हुए थे। वे भीतर और बाहर से एक थे। कबीर के साथ वही व्यक्ति चल सकता था जिसने माया-मोह आदि सारे बंधनों का त्याग किया हो, जिसने वैभव और विलास की वासना को जला दिया हो।

कबीर ने जिस सहज जीवन की कल्पना की थी, वह कहीं भी नहीं दिखाई देता था। जिन लोगों ने दूसरों को मुक्त कराने का काम लिया था वे लोग ही सब से अधिक बन्धन - ग्रस्त थे। ऐसे लोगों के प्रति कबीर का सहज, निर्मल मन समाज में व्याप्त मिथ्याडम्बर को देखकर विद्रोह कर उठा। कबीर की आत्मा इनके विरुद्ध तडफ उठी। कबीर के काव्य में उनकी आत्मा की यही तडफ स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

कबीर के स्वाभाविक गुण थे - स्पष्टता, निर्भीकता, दृढता, यथार्थ-दर्शिता, मस्ती, फक्कडपन, विवेकशीलता, अभेद दृष्टी और चारित्रिक निर्मलता आदि। ये सारी विशेषताएँ या गुण आज के कवि और साहित्यिकों के लिए आकर्षक और प्रेरणादायी हैं। जब हम देखते हैं कि एक अकेला व्यक्ति निर्भय होकर 15 वी शती की सम्पूर्ण धर्म एवं समाजव्यवस्था को चुनौती दे रहा है, तो उस महापुरुष-युगपुरुष के प्रति अपने आप आदर-भाव उत्पन्न होता है।

कबीर जानते थे कि मनुष्य की सामाजिक आर्थिक स्थिति उसके पूर्वजन्म के कर्मों का फल नहीं है, तो इसके मूल में अधिकार और शक्ति संपन्न उच्च वर्ग के लोगों का स्वार्थ भाव ही कारण है।

कबीर अस्थावादी व्यक्ति होने कारण गुरु और ईश्वर में उन्हें अखण्ड विश्वास था। वे मनुष्य की स्थिति को ईश्वरेच्छा का परिणाम मानते थे।

इसलिए उनका विद्रोह आस्तिक विद्रोह था नास्तिक नहीं। उन्होंने तत्कालीन समाज व्यवस्था को उस स्थान पर चुनौती दी थी जहाँ उन्होंने उसे ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध अनुभव किया था। उनका कहना था कि ईश्वर ने ही मानव-मात्र को उत्पन्न किया है। अत: उसके लिए सभी लोग समान हैं। ऊँच-निच, ब्राह्मण और शूद्र का भेद ईश्वर कृत नहीं है। इसी तरह ब्राह्मण - चण्डाल, छूत - अछूत, आश्रम-वर्ण आदि के भेद भी ईश्वर निर्मित नहीं है। सब लोग एक ही ईश्वरीय - ज्योति से उत्पन्न हैं, और सभी की शरीर - रचना एक ही प्रकार के हाड-मांस से हुई है तो कौन ब्राह्मण है, और कौन शूद्र ? निश्चित रूप से कबीर की ये सारी मान्यताएँ तत्कालीन व्यवस्था के प्रति विद्रोहात्मक प्रतीत होती हैं।

कबीर ने कही भी राजसत्ता को नहीं ललकारा और न ही आर्थिक उत्पीडन के प्रति आक्रोश-दु:ख व्यक्त किया। मात्र धार्मिक, सामाजिक, रूढियों एवं विकृतियों को ही उन्होंने लक्ष्य बनाया है।

डॉ. पारसनाथ तिवारी कबीर के बारे में ठीक ही कहते है कि-

" सामाजिक शोषण, अनाचार, और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष से आज भी कबीर का काव्य तीक्ष्ण शस्त्र है। कबीर से हम रूढिगत, सामन्ती दुराचार, और सामाजिक अन्यायी व्यवस्था के विरुद्ध डटकर लढना सीखते हैं और यह भी सीखते हैं कि विद्रोही कवि किस प्रकार अंत तक शोषण के दुर्ग के सामने अपना माथा ऊँचा रखता है। " (5)

अत: स्पष्ट है कि सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में कहीं भी मानव हित की बाधा नजर आयी वहाँ कबीर ने अपनी लेखनी से कुठाराघात किया है। अब हम कबीर की वाणी में अभिव्यक्त विद्रोह भाव निम्नांकित ढंग से प्रस्तुत करेगें -

अ. जाति-पाँति के संदर्भ में विद्रोह।

आ. धर्म के संदर्भ में विद्रोह।

इ. पूजा पाँठ, बाह्याडम्बर के संदर्भ में विद्रोह।

ई. अंध विश्वास के संदर्भ में विद्रोह।

अ. जाति-पाँति के संदर्भ में विद्रोह :-

कबीर के काल में जाति उपजातियों की एक बहुत बडी संख्या तैयार हो गयी थी। किसी वर्ग का सम्मानित व्यक्ति अपने को अपने वर्ग से ऊँचा समझने लगता था। धीरे-धीरे उसकी यह भावना उसे मूल जाति से अलग कर देती थी और वह व्यक्ति एक विशिष्ट जाति का प्रवर्तक बन जाता था। यही धर्म-संख्या और जन संख्या जाति-भेद की वृद्धि का कारण बनी। " एक जाति दूसरी जाति को दबाने की चेष्टा कर रही थी। दूसरी पराजित होने पर भी हार मानने को तैयार न थी। "(6) जाति-पाँति, भेदभाव के कारण समाज अज्ञान मय अंधविश्वासों का शिकार बना हुआ था। शूद्रों और म्लेच्छों की छाया से कटट्र हिन्दु घृणा करते थे। ऐसे संघर्ष मय कालखण्डमें कबीर को ऊँच-निच, जाति-पाँति भेदभाव और छुआछूत के विरुद्ध अपनी आवाज उठानी पडी।

कबीर ने जाति पाँति, ऊँच-नीच, और ब्राह्मण-शूद्र के भेद का विरोध किया है। इसी आधार पर उन्हें समाज सुधारक कहा जाता है। इसमें संदेह नहीं कि इन भेदों को दूर कर देने पर एक सुन्दर समाज की रचना हो सकती है। ऐसा समाज जिसमें हिन्दु-मुस्लिम, जात-पाँत, ब्राह्मण-शूद्र और ऊँच-नीच का भेद न हो। जाति-पाँति न हो और मनुष्य मात्र समान समझा जाय। किन्तु इस स्तर पर भी कबीर के विरोध का प्रेरणा स्रोत अध्यात्मिक तत्य ही है। वे भेद-भाव का विरोध इसलिए करते हैं कि तत्वत: सारे भेद मिथ्या हैं। वे कहते हैं कि एक ही ज्योति सब में व्याप्त है दूसरा काई तत्व है ही नहीं। ईश्वर ने एक बूँद से सारी सृष्टि रची है फिर ब्राह्मण और शूद्र का भेद किस लिए ? यदि हिन्दु और मुसलमान दो होते तो जन्म से ही इनमें अन्तर होता। मुसलमान अन्य मनुष्यों से अलग होते तो माता के गर्भ में ही उनका 'खतना' हो जाता।

कबीर जाति वाद के विरोधक थे। उन्होंनें हिन्दुओं के वर्ण-भेद और हिन्दु मुसलमान की साम्प्रदायिक भावना पर तीखा व्यंग्य किया है। डॉ. श्यामसुंदरदास की 'कबीर ग्रंथावली' में जाति-पाँति के संदर्भ में विद्रोह के निम्नांकित दोहे एवं पद मिलते हैं -

"जो पैं करता बरण बिचारै,
तौ जनमत तीनि डाँडि किन तारै।।
उतपति ब्यंद कहाँ थै आया, जो घरी आरू लागी माया।
नहीं को ऊँचा नहीं को नींचा, जाका प्यंड ताही का सींचा।।
जे तूँ बाँभन बभनी जाया, तो आँन बाँट ह्वै काहे न आया।
जे तूँ तुरक तुरकनीं जाया, तौ भीतरि खतनाँ क्यूँ न कराया।।
कहै कबीर मधिम नहीं कोई, सो मधिम जा मुखि रामँ न होई।।" (7)

कबीर कहते हैं कि भगवान को यदि जाति बिरादरी का ध्यान होता तो वह मानव के जन्म से ही तीन विभाजक रेखाएँ खींच देता। अर्थात मनुष्य की उत्पत्ति की विभिन्न पद्धतियाँ करा देता। वर्ण-भेद मानने वाले मनुष्यों की उत्पत्ति का केंद्र, स्थल क्या कहीं अन्यत्र होता है ? सब के सब उसी ब्रह्मस्वरूप बिन्दु से उत्पन्न हुए हैं। जो ही पंचभूतों से निर्मित शरीर चैतन्य के प्रकाश से प्रकाशवान हुआ, त्यों ही माया ने उसे आवृत्त कर लिया। जन्म से सब जीव समान हैं न कोई ऊँचा न कोई नीचा। जितने यह शरीर बनाया है उसीने इसी को पुष्ट किया है। इसका अर्थ इस प्रकार भी लिया जा सकता है कि जन्म से भी कुछ नहीं होता है अपने - अपने कर्मों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है और कर्म के अनुसार उसका वर्ण निर्धारित होता है।

हे ब्राह्मण ! यदि तू ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण सर्वोच्च वर्ण का है, तब फिर तूने उस मार्ग से जन्म क्यों नहीं लिया- अन्य जीवों की भाँति मूत्र द्वार से ही क्यों आया ? हे मुसलमान! यदि मुसलमानी के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण मुसलमान है तो फिर तेरे मुसलमान होने की पहचान जो खतना है प्रभुने माता के गर्भ में ही

वह क्यों नही कर दिया था। कबीर कहते हैं कि जन्म से कोई नीच नहीं है। नीच वहीं है जो मुख से भगवान राम का नाम नहीं लेता है।

भारतीय चिन्तन धारा में समानता की स्थापना करनेवाले कबीर प्रथम पुरुष थे। जिन्होंने शास्त्रों के नाम पर प्रचलित भेद-भाव की रूढि का खण्डन करते हुए स्पष्ट कहा हैं -

" जाति पाँति पूछे नहिं कोई,
हरि का भजै सो हरि का होई ।।" (8)

कबीर ने धनी, निर्धन, उच्च पदस्थ, निम्न पदस्थ को एक ही स्वामी की संतति बताया और सम्मान तथा प्रतिष्ठा का आधार ज्ञान को बताया, न कि जाति को।

कबीर कहते हैं कि मनुष्य को जाति पाँति के पचडे में बिल्कुल नहीं पडना चाहिए। तो सज्जन पुरुष के अच्छे स्वभाव और गुण से हमें मतलब रखना चाहिए। वेककहते हैं -

" जाति न पूछो साध की पूछ लीजिए ज्ञान।"(9)

साधु की जाति से हमें कोई मतलब नहीं, उसकी जाति-पाँति के सम्बन्ध में मत पूछो। वह किसी भी जाति का क्यों न हो उसके ज्ञान के सम्बन्ध में सोचो।

कबीर जात, धर्म आदि को बिल्कुल नहीं मानते थे। इसका उदाहरण इस पद द्वारा मिलता है -

" कहै कबीर येतहु रे भौंदू, बोलनहारा तुरक न हिंदू।।"(10)

हिंदु-मुस्लिम धर्मों के विरोधी मतों को देखते हुए कबीर ने कहा था कि दोनों भोंदू हैं। दोनों मूर्ख हैं , जो हिन्दु तथा मुसलमान बनने की बात करते हैं। वास्तव में हिन्दु और मुसलमान दोनों एक हैं। दोनों मनुष्य ही हैं। अत: यह भेद का पर्दा लगाना उचित नहीं।

"हिंदू मूये राँम कहि, मुसलमान खुदाइ ।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ मैं कदे न जाइ।।" (11)

अर्थात हिन्दु राम-राम रटते-रटते मर गये और मुसलमान खुदा-खुदा कहते-कहते मर गये। लेकिन राम और रहिम के नाम पर झगडा करना व्यर्थ है। जीवन्त वहीं है, जो न राम पर जाता है और न रहिम पर।

कबीर कहते हैं कि उच्च कुल में जन्म लेने से कोई मानव महान नहीं बन जाता है। उसके कर्म से ही समाज में वह मानव ऊँच या नीच बनता है -

" ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जे करणी ऊँच न होइ ।
सोवन कलस सुरै भरया, साधूँ निंया सोइ ।।" (12)

यदि व्यक्ति के कर्म उच्च नहीं है तो फिर उच्च कुल में जन्म लेने से क्या फायदा ? स्वर्ण कलश यदि मदिरा से भरा है तो साधुजन उसकी निन्दा ही करेगें।

कबीर स्वयं जात, धर्म के विरोधी होने के कारण इस विषय में वे तटस्थ थे। इस काल में हिन्दु-मुसलमान का धर्मगत भेद अधिक था। जिसके कारणवश इन दोनों में संघर्ष हुआ करते थे। दोनों जातियों में धर्म के नाम पर अन्धानुकरण था। दोनों अपने - अपने धर्म की सीमित दिवारों के बीच रहना पसन्द करते थे। यदि ये दोनों जातियाँ धर्म के सीमित क्षेत्र से दूर होती तो अवश्य ही दोनों में संघर्ष न होता और दोनों का एक समाज होता। कबीर दोनों धर्म एवं जाति की सीमा से परे थे। इसलिए उन्होंने जो कुछ भी कहा है दोनों के लिए कहा है। वे हमेशा ज्ञान या विचार को महत्व देते थे वे जाति या धर्म के बिल्कुल पक्षपाती नहीं थे। उनका कहना था कि हिन्दु वहीं है, मुसलमान वही है जिनका ईमान ठीक हो।

कबीर के समय में समाज में जातिवाद की समस्या कठिन थी। जातिवाद की समस्याने समाज को विभिन्न वर्गों में बाँट दिया था, और इसकारण समाज में संघर्ष निर्माण हुआ था। ब्राह्मण अपने आप को पवित्र और श्रेष्ठ समझते थे, तो मुसलमान अपने को कट्टर धर्मी और शक्तिशाली समझते थे। हिन्दुओं में अनेक जातियाँ थीं जिनमें एक दूसरे के प्रति ऊँच-नीच, छुआछूत का भेद-भाव था। मुसलमानों में भी अनेक धर्म और सम्प्रदाय थे जिनके कारण वे एक दूसरे से अलग हो गये थे। इस तरह हिन्दु-मुसलमान दोनों में जातियता का रंग चढ गया था। दोनों के अलग-अलग ईश्वर थे और दोनों अपने-अपने ईश्वर की कृपा पर जीवित थे।

कबीर जाति भेद की व्यर्थता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि -

" हम तुम्ह माँ है एकै लोहू, एकै प्राँन जीवन है मोहू ।।
एकही बात रहै दस मासा, सूतग पातग एकै आसा ।।
एकही जननीं जन्याँ संतारा, कौंन ग्यान थैं भये निनारा।।"(13)

जाति-पाँति का समर्थन करने वालों को फटकारते हुए कबीर ने कहा कि सबका शरीर एक तत्व से बना है और सब मनुष्य हैं। हमारे तुम्हारे बीच में एक रक्त है। एक ही प्रान जीवन का मोह है। एक ही तरह सब दस माह गर्भवास करते हैं। सब एक ही माँ से पैदा होते हैं तो किस ज्ञान के कारण तुम अपने को अलग समझते हो ? किस आधार पर भेद-भाव किया जाता है।

अन्य एक पद में कबीर कहते हैं कि-

" ऐसा भेद बिगूचन भारी ।
बेद कतेब दीन आरू दुनियाँ, कौंन पुरिष कौन नारी।।
एक बूंद एकै मल मूतर, एक चाँम एक गूदा।
एक जोति थैं सब उतपनाँ कौन काँम्हन कौन सूदा।।"(14)

कबीर एकात्मवादी होने कारण वे मनुष्य-मनुष्य के बीच का भेद भाव दूर करना चाहते थे। कबीर कहते हैं कि वेद और कुरान,

धर्म और संसार पुरुष और नारी आदि के आधार पर कल्पित भेद-भाव सर्वथा व्यर्थ हैं ! सब में एक ही शुक्र, एक ही मल-मूत्र एक ही कर्म और एक ही मांस है। सब एक ही ज्योति से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए कौन ब्राह्मण और कौन शूद्र है ?

" तो हिंदू सो मुसलमाँन, जिसका दुरस रहै ईमाँन ।।
तो ब्रह्मा जो कथै ब्रह्म गियाँन, काजी तो जाँनैं रहिमाँन।।"(15)

कबीर कहते हैं कि जो प्रलोभनों द्वारा विचलित नहीं होता। वही ब्राह्मण है, जो ब्रह्मज्ञान की बात करता है। वही काजी [धर्म और न्याय का ज्ञानी] है जो भगवान के दयालु स्वरूप को पहचानता है अर्थात् जो प्रत्येक मामले पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करता है। सच्चा हिन्दु और मुसलमान वही है, जिसका ईमान ठीक हो।

कबीर जातिवाद पर विश्वास करनेवाले लोगों को अज्ञानी और अशिक्षित मानते हैं। कबीर के मतानुसार गुरु व्यापक विचारोंवाला होना चाहिए जो मिलन सार स्वभाव का होता है और इसी कारण वह सर्व प्रिय होता है। वह जाति-पाँति का भेद मिटाकर आटे में नमक जैसे आम समाज में मिल जाता है। दूसरे लोग उसे यह नहीं कह सकते कि वह किस जाति का है -

" कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटैं लूँण ।
जाति पाँति कुल सब मिटे, नाँव धरौगे काँण ।।"(16)

कबीर के विचार से समाज में छुआ-छूत या छूत-अछूत का भेद पैदा करने वाले ने इस संसार में जन्म नहीं लेना चाहिए -

" काहे कों किजै पाँडे छोति बिचारा।
छोतिहीं तै उपना सब संसारा।।
हँमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसैं दूध।
तुम्ह कैसे बाँम्हण पाँडे हम कैसे सूद।।
छोति छोति करता तुम्हहीं जाए।
तौ गरभवास काहें कौं आए।।"(17)

कबीर पाखण्डी लोगों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि आरे पाण्डे! तुम क्यों छुत-अछुत की बात करते हो ? यह संसार तो छुत से ही पैदा हुआ है। बिना छुत स्पर्श अथवा दो वस्तुओं के संयोग बिना कोई चीज निर्माण ही नहीं होती। इसलिए कबीर पण्डित से पूछते हैं कि मेरा शरीर कैसे रक्त से बना है और तुम्हारा शरीर कैसे दूध से। अर्थात दोनों के शरीर में एक ही प्रकार का रक्त होने पर भी एक कैसे पवित्र बन सकता है और दूसरा कैसे अपवित्र ? तुम कैसे ब्राह्मण हो और मैं कैसे शुद्र ? तुमने ही सब छुत का आडम्बर पैदा किया है। तुम्हें यदि छुत से बचना था तो तुम गर्भवास से क्यों आये ?

कबीर ने कहा है कि जाति के नामपर वर्ग बनाना अज्ञान है तथा जाति के नाम पर विविध ईश्वर की कल्पना करना भी मूर्खता है -

" काजी कौन कतेब बषाँनै।।
पड़त पढ़त केते दिन बीते, गति एकै नहीं जाँनैं।
सकति से नेह पकरि करि तुँनति, यहु नबदूँ रे भाई।
जौर षुदाइ तुरक मोहि करता, तौ आपै कटि किन जाई।।
हौं तौ तुरक किया करि तुनति, औरति सौं का कहिये।
अरध तरीरी नारि न छूटै, आधा हिंदू रहिये।।" (18)

कबीर ने काजी को सम्बोधित करते हुए कहा हैं -हे काजी! तुम किस कुरान की प्रशंसा करते हो। पुरान पढते - पढते कितने दिन बीत गये पर एक बात भी तुम्हारी समझ में नहीं आयी। अपनी खतना कराके मुसलमान बन जाते हो लेकिन नारी को कैसे मुसलमान बनाओगे ? पत्नी हिन्दु और पति मुसलमान यह कैसा अर्तगत धर्म है, जो एक परिवार के दो जातियों में बाँट देता हैं।

कबीर कालीन हिन्दु-मुसलमान एवं अन्य जातियाँ धर्म के नाम पर झगड रही थी। उनके संकुचित विचारों के प्रति प्रतिक्रिया के स्वमें कबीर बोल उठे थे कि -

"कहै कबीरा दास फकीरा, अपनी रहि चलि भाई।
हिंदू तुरक का करता एकै, ता रति लखी न जाई।।" (19)

भाई अपनी राह पर चलो। अपनी आत्मा की आवाज के अनुसार

धर्माचरण करो। हिन्दु-मुसलमान आदि सब को बनानेवाला एक ही है इसलिए हिन्दु मुसलमान एक है। दोनों के धर्म दोनों की जाति, तथा दोनों के कर्ता एक ही है लेकिन उसकी लीला किसी की समझ में नहीं आती है।

कबीर कहते हैं जात-पाँत, छूत-अछूत आदि सब मानव के अमरी व्यवहार हैं, जो लोगों में भेद और अहंकार पैदा कर देते हैं -

" कहै कबीर झूठे अभिमान, सो हम सो तुम्ह एक समान।।" (20)

कबीर कहते हैं कि बडप्पन का अभिमान सर्वत: मिथ्या है। हम और तुम सब एक ही तत्व हैं और परस्पर समान हैं। अर्थात सभी मुनुष्य जाति एक है और सब में एक प्रकार की समानता भी है।

कबीर सामाजिक समानता का नारा लगाते हुए कहते हैं कि -

" ऊँच नीच सम सरिया, तार्थै जन कबीर निसतरिया।" (21)

भगवान ने ऊँच-नीच सब को समान रूप से व्यवस्थित किया है अथवा भगवान ने ऐसी व्यवस्था की है कि ऊँच-नीच सब को अपने उद्धार का समान अवसर प्राप्त हो सकता है। यही कारण है कि जुलाहा जैसे नीच कुल में उत्पन्न होने पर भी भगवान के सेवक कबीर का उद्धार हो गया।

ऊँच कुल में जन्म लेने से कोई बडा नहीं होता इस बात को समझाने के लिए कबीर ने निम्न उदाहरण दिया है -

" ऊँचा कुल कै कारणैं, बंस बध्या अधिकार।
चंदन बास भेदै नहीं, जाल्या सब परिवार।।" (22)

केवल ऊँचे कुल में जन्म लेनेसे कोई ऊँचा नहीं होता, जब तक कि उसके भीतर ज्ञान और अनुभूति की सुगंधी न व्याप्त हो। बडप्पन की शान में ऐसे लोग पारस्पारिक ईर्षा, द्वेष से नष्ट हो जाते हैं।

कबीर कहते हैं कि दूसरे के सद्गुण ग्रहण करने से बूरा व्यक्ति भी अच्छा बन जाता है -

"कबीर चंदन कै निड़ै, नीव भि चंदन होइ।
बूड़ा बंस बड़ाइताँ, यौं जिनि बूड़ै कोइ।।" (23)

ऊँचे कुल में जन्म लेकर भी जो निगुणा होते हैं उनमें नम्रता और गुण की ग्रहणशीलता नहीं होती। फलस्वरूप उनका ऊँचापन ही उनके विनाश का कारण बनता है। वे अपने अहंकार से ही नष्ट हो जाते हैं ऐसा बड़प्पन किस काम का ?

कबीर ने मनुष्य जाति की नश्वरता को स्पष्ट करते हुए कहा है -

" पाँणी केरा बुदबुदा, इसी हमारी जाति।
एक दिनाँ छिप जाँहिंगे, तारे ज्यूँ परभाति।।"(24)

यहाँ कबीर ने जीव की नश्वरता का संकेत किया है। वे कहते हैं कि मनुष्य की जाति पानी के बुदबुदों के समान क्षणभंगुर होने वाली है। तारे रात्रिभर आकाश में छिटके रहते हैं और प्रभात होते ही अदृष्य हो जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी कुछ दिन संसार में रहकर यहाँ से चला जायेगा।

उपर्युक्त दोहों और पदों को देखने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि जातियों में विकसित भेदभाव तथा उनके अंतर्गत व्याप्त ऊँच नीच की भावना को निकालने में जो शक्तियाँ इस काल में प्रयत्नशील थीं, उनमें संत भी महत्वपूर्ण हैं, और इन सन्तों में सबसे महत्वपूर्ण कार्य कबीर जैसे संत ने किया है। उन्होंने वर्णों और जातियों में विभक्त समाज को एकता के सूत्र में बांधने का महान प्रयत्न किया है। जातियों की यह स्थिति समाज के लिए अहितकारक है, इस बात का अनुभव कबीर को अधिक था। वे स्वयं ऐसे समाज से संबंधित थे जहाँ इसका [ऊँच नीच, जात-पाँत, छूआ-छूत] सबसे कटु अनुभव मिला था। साथ ही कबीर अपने काल के उस महान आन्दोलन के अंग थे जिसने समाज की एकता को हासिल करने का दायित्व ग्रहण किया था।

आ. धर्म के संदर्भ में विद्रोह:-

कबीर की धार्मिक विचारधारा का उदय भी हिन्दु और मुस्लिम धर्म के पाखण्डपूर्ण एवं विकृत स्प की प्रतिक्रिया के स्प में हुआ था। यही कारण है कि इन विधि-विधान प्रधान हिन्दु और मुस्लिम धर्म के विरुद्ध सहज धर्म का निर्माण कबीर ने किया। कबीर काल में धर्म का सर्वजन सुलभ मंगल स्वरूप लुप्त हो चुका था। धर्म के मौलिक, सच्चे स्वरूप को हिन्दु और मुसलमान दोनों ही भूल बैठे थे। हिन्दुओं में वर्ण-व्यवस्था की कठोरता के फलस्वरूप ऊँच-नीच, जाति-पाँति एवं छुआ-छूत का भेद-भाव बढता ही जा रहा था। निम्न वर्गों के लोगों के साथ अनेक अत्याचार हो रहे थे। उनके लिए धर्म का द्वार बंद हो चुका था। इस प्रकार से राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था पूर्णत: डगमगा गयी थी। " इस कालमें एक ऐसे धर्म प्रवर्तक महान नेता की आवश्यकता थी, जो जनता के हृदय में आशा एवं उत्साह का संचार कर सके। यह कार्य महात्मा कबीर के द्वारा ही संभव हो सका।" (25)

कबीर कहते है कि हिन्दु और मुसलमान लोग सही धर्म को नहीं जानते हैं। उनकी आपस में लढाई अज्ञान के कारण हैं। कबीर ने जिस मानव धर्म की स्थापना की है, जो कि प्रत्येक धर्म का मूल है। कबीर ने सब को कर्म करने की चेतावनी दी। ऐसा कर्म नहीं जो राम-विहीन हो। वही कर्म, कर्म है जो 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' होता है। कबीर सभी जीवों की अभिन्नता देखते हैं क्योंकि सब में तो वही परमतत्व है, सभी ब्रह्म स्वरूप हैं। सत्य, दया, क्षमा, धीरज, आदि के आचरण स्वयं के साथ-साथ सारे समाज के उत्थान के लिए ही थे।

कबीर मनुष्य को विशुद्ध सामाजिकता की दृष्टि से देखते थे, इसीलिए उस समाज में जितने ऊपर से आरोपित आवरण थे उनको वे उतार फेंकना चाहते थे। वे मानव - जीवन के व्यवहार को एक धर्म के स्प में देखना चाहते थे और समाज में प्रचलित सारे कर्मकाण्डों का तिरस्कार करते थे। कबीर का विरोध उन सारी सामाजिक बुराईयों

से था , न कि किसी धर्म या सम्प्रदाय से। वास्तव में कबीर के द्वारा किया गया विरोध एक वर्ग का विरोध था, जिसका नेतृत्व कबीर ने किया था। इन सब पाखण्डों की प्रतिक्रिया में कुछ कहने के लिए कबीर ही समर्थ थे, जो इतने साहस से बोल सकते थे। वे लोगों को मीठी और सच्ची बातें सुना सकते थे, और पण्डों, मुल्लाओं को फटकार भी सकते थे।

कबीर के बारें में डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन है कि - " कबीर ने धर्म के क्षेत्र में ऐसी क्रान्ति उपस्थित की, जो किसी धर्म के आचार्य के द्वारा जनता के बीच में अभी तक उपस्थित नहीं की जा सकी थी। उन्होंने पहलीबार किसी धार्मिक क्रान्ति के सहारे जनता के हृदय में अपने धर्म के लिए ऐसी सच्ची श्रद्धा का बीजवपन किया जो अनेक युगों तक राजनीति और अन्य धर्मों के प्रचण्ड आघातों से भी जर्जरित नहीं हो सका। यह विचारधारा जनता के लिए एक ऐसी शक्ति बनी जिसके द्वारा कबीर के जीवन का सबसे बडा बल सिद्ध हुआ।" (26)

डॉ. श्यामसुंदरदास की 'कबीर ग्रंथावली' में धर्म के संदर्भ में विद्रोह के निम्न पद और दोहे मिलते हैं।

कबीर ने अपने जीवन काल में धर्म जात-पाँत को कभी महत्व नहीं दिया। धर्म के नाम पर पंडित, पीर आदि अधर्म कर रहे थे इनका विरोध करते हुए कबीर कहते हैं-

" हँमारै राँम रहीम करीमा केसो, अलह राँम सति सोई।
बिसमिल मेटि बिसंभर एकै, और न दूजा कोई।।
इनकै काजी मुलाँ पीर पैकंबर, रोजा पछिम निवाजा।
इनकै पूरब दिसा देव दिज पूजा, ग्यारसि गंग दिवाजा।।
तुरक मसीति देहुरै हिंदू, दहूँठा राँम खुदाई।
जहाँ मसीति देहुरा नाँहीं, तहाँ काकी ठकुराई।।
हिंदू तुरक दोऊ रह तूटी, फूटी अरु कनराई।
अरध उरध दसहूँ दिस जित तित, पूरि रह्या राम राई।।
कहै कबीरा दास फकीरा, अपनी रहि यलि भाई।

हिंदू तुरक का करता एकै, ता गति लखी न जाई।।" (27)

हमारे लिए राम और रहीम, करीम और केशव , अल्लाह और राम वहीं एक सत्य है। बिसमिल्ला को मिटाकर विश्वंभर कहना एक ही बात है। मुसलमानों के धर्म के अंग हैं काजी, मुल्ला, पीर, पैगंबर रोजा तथा पश्चिम की ओर मुँह करके नमाज। हिन्दुओं के धर्म के अंग हैं पूर्व दिशा की ओर मुँह करके संध्योपासना करना, देवताओं को मनाना, ब्राह्मण की पूजा, एकादशी का व्रत, गंगास्नान और दीपार्चन। मुसलमान मस्जिद में तथा हिन्दु मन्दिर में उपासना करते हैं परन्तु जिस स्थान पर मस्जिद या मन्दिर नहीं है वहाँ क्या कोई भगवान नहीं है ? हिन्दु और मुसलमान दोनों की राहे टूटी हुई अर्थात त्रुटिपूर्ण हैं। नीचे - ऊपर दसों दिशाओं में जहाँ देखो वहाँ राजा राम ही व्याप्त हो रहे हैं। कबीर आगे कहते हैं कि भई अपनी राह पर चलो, अपनी आत्मा की आवाज के अनुसार धर्माचरण करो। हिन्दु और मुसलमान सबको बनाने वाला एक ही है उसकी लीला किसी की समझ में नहीं आती है।

इस प्रकार कबीर हिन्दु-मुसलमान में होने वाले मन्दिर-मस्जिद की व्यर्थता को स्पष्ट करते हैं।

कबीर ने हिन्दु और मुस्लिम धर्म के मतों को देखकर कहा -

" कहै कबीर चेतहु रे भाँदू, बोलनहारा तुरक न हिंदू।।" (28)

हिन्दु और मुसलमान दोनों धर्मों के लोग मूर्ख हैं। जो हिन्दु तथा मुसलमान बनने की बात करते हैं वास्तव में हिन्दु और मुसलमान एकही हैं। दोनों मनुष्य तो ही हैं।

कबीर का दूसरा एक पद इसी आशय को स्पष्ट करता है -

काजी कौन कतेब बषाँनै।।
पड़त पढ़त केते दिन बीते, गति एकै रहीं जाँनैं।।
सकति सेनेह पकरि करि सुँनति, यहु नबदूँ रे भाई।
जौर षुदाइ तुरक मोहि करता, तौ आपै कटि किन जाई।।
हौं तो तुरक किया करि सुनति, औरति सौं का कहिये।

अरध सरीरी नारि न छूटै, आधा हिंदू रहिये।।
छाड़ि कतेब रौंम कहि काजी, खून करत हौ भारी।।" (29)

हे काजी! तुम किस कुरान का वर्णन करते हो इस कुरान को पढते-पढते तुम को कितने दिन हो गये, परन्तु ईश्वर की एक भी बात तुम्हारी समझ में नहीं आयी। जबरदस्ती अथवा प्रेम के साथ पकड कर 'खतना' कर देने से मुसलमान की महिमा को मैं स्वीकार नहीं कर सकता हूँ। खुदा यदि मुझे मुसलमान बनाना है तो मेरी खतना अपने आप हो जानी चाहिए। अच्छा मान भी लिया जाय, खतना करके तुम मुझे मुसलमान बना दोगे परन्तु स्त्री के विषय में तुम क्या करोगे? औरत की सुन्नत होती ही नहीं है। तो क्या स्त्री मुसलमान हो नहीं सकती। सुन्नत न हो सकने के कारण नारी तो मुसलमान हो नहीं सकती। इसका अर्थ यह है कि मानव समाजरूपी शरीर का आधा भाग अपने हिन्दुपन को नहीं छोड पाता। और इस प्रकार से आधा समाज मुसलमान बना देने पर भी आधा समाज हिन्दु ही बना रहेगा। हे काजी कुफ्र के नाम पर बाहयाचार की बातें करना बंद कर दे और राम का नाम ले। तू व्यर्थ ही सुन्नत कर खून बहाता है अथवा धर्म - परिवर्तन कर अन्याय करता है।

इस प्रकार से कबीर हिन्दु - मुस्लिम धर्म का विरोध करते हुए मानव धर्म को ही महत्व देते हैं।

कबीर के कालखण्ड में हिन्दु, मुसलमान एवं अन्य जाति के लोग धर्म और जाति के नाम पर झगड रहे थे। उनके संकुचित विचारों को दूर करने के लिए कबीर ने कहा है -

" क्या ले माटी भुँइ सूँ मारैं, क्या जल देह न्हवायें।
जोर करै मसकीन सतावै, गुँन ही रहैं छिपायैं।।
क्या तू जू जप मंजन कीये, क्या मसीति सिर नाँयें।
रोजा करैं निमाज गुजारें, क्या हज काबै जाँयें।।
ब्राँहमण ग्यरसि करैं चौबीसौं, काजी महरम जाँन।
ग्यारह मास जुदे क्यूँ किये: एकहि माँहि समाँन।।

जौर खुदाइ मसीति बसत हैं, और मुलिक किस केरा।
तीरथ मूरति राँम निवासा, दुहु मैं किनहुँ न हेरा।।
पूरिब दिसा हरी का बासा, पछिम अलह मुकाँमा।
दिल ही खोजि दिलै दिल भीतरि, इहाँ राँम रहिमाँनाँ।।" (30)

जो व्यक्ति जुल्म करके दीन - दुखियों को सताता है और पूजा-पाँठ आदि के द्वारा अपने अवगुणों को छिपाना चाहता है उसका क्या किया जाय ? उस व्यक्ति के शरीर पर किसी तीर्थ स्थान की मिटटी मलने से अथवा उसको तीर्थ जल से स्नान कराने से क्या लाभ है ? ऐसे पाखण्डी एवं अत्याचारी व्यक्ति को संबोधित करते हुए कबीर कहते हैं कि तुम्हारे नमाज से पहले यथाविधि हाथ-पाँव और मुँह धोने से तथा जल छिडक कर पवित्र होने से क्या लाभ है ? तुम मस्जिद में जाकर सीर झुकाते हो इससे क्या लाभ है ? रोजा रखने, नमाज पढने तथा हज एवं काबे जाने से क्या लाभ है ? ब्राह्मण वर्ष की चौबिसौं एकादसियों को उपवास रखता हैं और काजी मुहर्रम के पूरे महिने भर इमाम हुसैन की शहादत के लिए शोक मनाता है, पर इसका क्या उपयोग है ? रमजान के महिने को छोडकर शेष ग्यारह महिनों को अलग क्यों कर दिया ? सभी महिने समान हैं तो सभी में धार्मिक कृत्य करने चाहिए। अगर खुदा केवल मस्जिद में ही रहता है तो शेष समस्त संसार किस का है ? हिन्दुओं के अनुसार तीर्थों में और मूर्तियों में भगवान का निवास है। परन्तु उसके दर्शन तो कहीं भी नहीं होते हैं। हिन्दुओं के मतानुसार पूर्व दिशा में भगवान का निवास है, मुसलमान की राय में पश्चिमि अल्लाह का निवास स्थान हैं इस प्रकार हिन्दु और मुसलमान दोनों भी भगवान को मानो सर्वव्यापि नहीं मानते। हे मानव, तुम अपने हृदय को ही ढूंढों, उस हृदय में तुम्हें राम और रहिम दोनों के दर्शन होंगे।

कबीर को धर्म ग्रंथों से विरोध नहीं था। उनका विरोध उन व्यक्तियों के प्रति था जो धर्म ग्रंथो के सैद्धान्तिक पक्ष की उपेक्षा करते थे और बाह्याचारों के नाम पर जनता को गुमराह करते थे -

" बद कतेब कहौ क्यूँ झूठा, झूठा जोनि विचारै।
सब घटि एक एक करि जाँनै, भीं दूजा करि मारै।।"(31)

कबीर कहते हैं कि वेद और कुरान आदि धर्म ग्रंथों को झूठा क्यों कहते हो ? झूठा वही व्यक्ति है जो इसके सच्चे अर्थ को नहीं समझता। सभी शरीरधारियों में जब तू उस परमात्मा को व्याप्त मानता है, तब फिर वध्य जीव को अपने से भिन्न मानकर तू क्यों मारता है।

कबीर कहते हैं कि कोरा शास्त्र ज्ञान व्यर्थ है। सदाचारण ही सब कुछ है। पढे - लिखे कटुवादी एवं दुराचारी व्यक्ति में और किताबों का बण्डल अपनी पीठ पर लादनेवाले गधे में वस्तुत: कोई अन्तर नहीं है।

" पोथी पढ़ि - पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोइ।
ढाई आक्षर प्रेम का, पढै सो पण्डित होइ।। "(32)

कबीर पांडित्य को बेकार समझते थे जो केवल ज्ञान का बोझ ढोना सिखाता है, जो मनुष्य को जड बना देता है और भगवान के प्रेम से वंचित करता है। भगवत-प्रेम पर उनकी दृष्टि इतनी दृढ - निबद्ध थी कि इस ढाई अक्षर [प्रेम] को ही वे प्रधान मानते थे।

" जिनि कलमाँ कलि माँहि पठावा, कुदरत खोजि तिन्हूँ नही पावा।।
कर्म करीम भये कर्तूता, वेद कुरान भये दोऊ रीता।।
कृतम सो जु गरभ अवतरिया, कृतम सो जु नाव जस धरिया।।
कृतम सुनित्य और जनेऊ, हिंदू तुरक न जानैं भेऊ।।
मन मुतले की जुगति न जानै, मति भलै दै दीन बखानैं।।"(33)

कबीर कहते हैं कि जिसने इस कलियुग में कलमा का उपदेश मानवों तक पहुँचाया वह भी भगवान की माया का रहस्य नहीं समझ सका। मोह एवं अज्ञान के प्रभाव के कारण श्रेष्ठ कर्म भी निंद्य कर्मों में परिणत हो जाते हैं। वेद और कुरान जैसे धर्म के श्रेष्ठ ग्रंथ भी अज्ञानी व्यक्ति के हाथों में पड़ जाने के कारण बाह्याचार के आधार बन गये। जो गर्भ में उत्पन्न होता है वह कृत्रिम है जो नाम और यश धारण करता है वह भी कृत्रिम है। सुन्नत करवाना यज्ञोपवीत धारण करना दोनों ही बाह्याडम्बर मात्र है। हिन्दु और मुसलमान दोनों ही परमतत्व के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते हैं। व्यक्ति अपने मन का सुधार करने का उपाय तो जानता नहीं है और मति भ्रष्ट होकर

दो भिन्न धर्मों की बात करता है।

कबीर ने हिन्दु और मुसलमान दोनों धर्मों की धार्मिक पद्धतियों का खण्डन करते हुए कहा है -

" एक निरंजन अलह मेरा, हिंदू तुरक दहू नहीं नेरा।।
राखूँ ब्रत न महरम जाँनाँ, तिसही सुमिरूँ जो रहै निदाँनाँ।
पूजा करूँ न निमाज गुजारूँ, एक निराकार हिरदै नमसकारूँ।।
नाँ हज जाँऊँ न तीरथ पूजा, एक पिछाँण्या तौ का दूजा।।
कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन तूँ मन लागा ।। " (34)

मुझे हिन्दु अथवा मुसलमान किसी भी धर्म से कोई वास्ता नहीं है। मैं न व्रत रखता हूँ, न मैं मुहर्रम में विश्वास रखता हूँ। मैं तो केवल उसका स्मरण करता हूँ जो एक मात्र सत्य होने से अन्ततः अवशिष्ट रह जाता है। मैं न किसी देवता की पूजा करता हूँ और न मस्जिद में जाकर नमाज पढता हूँ। मैं तो एक मात्र निराकार परमात्मा को हृदय में धारण कर उसे नमस्कार करता हूँ। अब मैने तो एक परम तत्व को पहचान लिया है, तब फिर अन्य किसी देवता अथवा किसी साधना की क्या आवश्यकता ? कबीर कहते हैं कि मेरे सारे भ्रम नष्ट हो गये हैं। और एक मात्र तत्व निरंजन में मेरा हृदय रम गया है।

कबीर ने बाहयोपचार एवं आडम्बरपूर्ण धर्म के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं -

" इक पढ़हि पाठ इक भ्रमैं उदास, इक नगन निरंतर रहैं निवास।।
इक जोग जुगुति तन हूँहिं खींन, ऐसैं राँम नाँम सँगि रहें न लीन।।
इक हूँहि दीन एक देहि दाँन, इक करैं कलापी सुरा पाँन।।"(35)

कबीर कहते हैं कि कोई वेद पढ़ता हैं तो कोई उदास बना घूम रहा है। कोई नंगा रहता है। कोई योग-साधना में लिप्त शरीर को सुखा कर कांटा जैसा कर चुका है, लेकिन दुःख की बात है कि ये सब राम की भक्ति में, ऐसे तल्लीन नहीं रह पाते हैं। एक भिक्षुक बनकर घर-घर अलख जगाकर भिक्षा माँगता फिरता हैं तो एक दानी बनकर भिक्षा देने में ही पुण्य समझ कर दान देता है। कोई कलापी बन कर सुरापान करता है।

इस प्रकार से कबीर ने धर्म के संदर्भ में अपने विद्रोह के विचार प्रकट किये हैं। निश्चय ही महात्मा कबीर का सहज धर्म आन्तरिक शुद्धता पर आधारित है। यदि मन शुद्ध है, हृदय निष्कपट है, विचार पवित्र हैं, और आचरण सात्विक है तो धार्मिक कहलाने में बाधा नहीं पड सकती। कबीर ने धर्म में मन की शुद्धता पर बहुत जोर दिया है। मन शुद्ध होने पर ही सहज ज्ञान बिना पढ़े ही प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार उनका विश्वास है, भगवान की प्राप्ति जो प्रत्येक धर्म का लक्ष्य है, बिना हृदय की शुद्धता के नहीं हो सकती। मन पवित्र हो, हृदय शुद्ध हो साथ ही साथ विचार भी सात्विक हो तभी मनुष्य धार्मिक कहला सकता है। विचारों का सच्चा और पवित्र होना नितान्त आवश्यक है। वास्तव में कबीर का यही ' सहज धर्म, ' ' मानव धर्म ' है।

इ. <u>पूजा-पाँठ, बाहयाडम्बर के संदर्भ में विद्रोह</u> :-

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कबीर से बडा मानवतावादी कोई नहीं हुआ। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित समस्त अन्धविश्वासों रूढियों परम्पराओं तथा मिथ्या सिद्धांतों द्वारा प्रचारित सामाजिक विषमताओं को समूल नष्ट करने का बीडा उठाया और निर्भयतापूर्वक सभी पाखण्डों पर प्रहार किया। उन्होंने तत्कालीन पंडितों, ब्राह्मणों, पीर, मुल्ला आदि के साथ सामन्तों तथा शासकों को लक्ष्य कर अनेक विद्रोहात्मक बातें कहीं हैं। जिसके कारण अनेक भौतिक ऐश्वर्य पर आधारित उनके झूठे अभिमान का समूल नाश हो गया।

डॉ. पारसनाथ तिवारी कबीर के बारें में ठीक ही कहते हैं - " सामाजिक शोषण, अनाचार और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष से आज भी कबीर का काव्य तीक्ष्ण शस्त्र है। कबीर से हम रूढिगत, सामन्ती दुराचार और सामाजिक अन्यायी व्यवस्था के विरुद्ध उटकर लटना सीखते हैं और यह भी सीखते हैं कि विद्रोही कवि किस प्रकार अन्त तक शोषण दुर्ग के सामने अपना माथा ऊँचा रखता है। " (36)

कबीर को पूजा-पाँठ, बाह्याडम्बर और धार्मिक विधियों के प्रदर्शन की आलोचना हटयोगियों और कबीर के गुरु रामानंद से मिली परंपरा थी। इस संदर्भ में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं - " जिन दिनों कबीर का अविर्भाव हुआ था, उन दिनों हिन्दुओं में पौराणिक मत ही प्रबल था। परन्तु यह साधारण गृहस्थों का धर्म था। देश में और भी नाना भाँति की साधनाएँ थी। कोई वेदपाठी था, तो कोई उदासी, कोई ऐसा न था, जो दिन बना फिरता था। कोई दान-पुण्य में ही व्यस्त था, कोई मदिरा सेवन को ही चरम साधना मानता था, तो कोई तंत्र-मंत्र औषधादि की करामत से ही सिद्ध बना फिरता था , कोई सिद्ध था, कोई तीर्थव्रती था, धुम्रपान से शरीर को काला बना रहा था। सब थे पर कोई राम-नाम में लीन नहीं था। सद्गुरु रामानन्द की कृपा से कबीर को यह महामंत्र मिल गया था। उस समय मुनि थे, पीर थे, दिगंबर थे, जंगम थे, ब्राह्मण थे, सन्याशी थे, पर सभी माया के चक्कर में पडे हुए थे।" (37)

कबीर ने अपने जीवन काल में हिन्दुओं के श्राद्ध, एकादशी, तीर्थव्रत, मन्दिर और मुसलमानों के रोजा, नमाज, हज आदि सब का घोर विरोध किया हैं। इस बाहरी पाखण्ड या बाह्याडम्बर के लिए उन्होंने हिन्दु - मुसलमान दोनों को खूब फटकारे सुनाई हैं।

डॉ. रामचन्द्र तिवारी ठीक ही कहते हैं कि-" कबीरदास ने जहाँ कहीं ढोंग, दिखावा, कपट, धोका, फरेब, आडम्बर, स्वाँग, प्रपंच, छल, छदम, देखा, वही निर्भय होकर प्रहार किया। पण्डित हो, चाहे मौलावी, गुरु हो चाहे पीर, योगी हो चाहे फकीर, हिन्दु हो चाहे मुसलमान, यदि वह सच्चाई के मार्ग से अलग है, तो कबीर ने उसको चेतावनी दी है, टोका है, खिल्ली उड़ाई है। व्यंग्य और उपहास किया है।"(38)

कबीर का युग सामाजिक भेद-भाव, रूढ़िवाद और वैषम्य का युग था। जहाँ एक ओर द्विज थे जिनमें वर्णाश्रम की दृष्टि से ब्राह्मण सबसे उच्च थे। वहाँ दूसरी ओर छोटी जातियों के लोग थे, जिन पर सब हँसते थे। कबीर इन्हीं छोटी जातियों के प्रतिनिधि थे। जहाँ ज्ञान में ब्राह्मण सबसे बडा था वहाँ जुलाहा जातिके कबीर को कौन पूछता ? यह ब्राह्मण वर्ग संध्या स्नान

गायत्री को ही सब कुछ समझता था। उसने वेद स्मृति की शृंखलाओं से सारे समाज को जखड रखा था। सूतक पालन के विचार से सारा जीवन इतना कुंठित हो गया था कि स्वतंत्र चेता व्यक्ति के लिए कुछ भी करना असंभव था। यह सब फँसाने की विधियाँ थी, छुटने की विधि कोई नहीं बताता था। उन्होंने श्राद्ध और बलि को ही उच्चतम धर्म समझ रखा था। वह जनता को स्वर्ग लोक के सुखों का भूलावा देते थे, और नरक का भय दिखलाते थे। मूर्ति-पूजा के नाम-पर वह स्वयं छत्पन्न भोग भोगते थे।

डॉ. श्यामसुंदरदास की 'कबीर ग्रंथावली' में पूजा-पाँठ, बाहया-डम्बर के संदर्भ में विद्रोह के निम्न पद और दोहे प्राप्त होते हैं -

अ. हिन्दुओं के बाहयाडम्बर :-

1. पूजा-पाँठ :-

कबीर पूजा-पाँठ, जप-तप और शास्त्र ज्ञान आदि को झूठ और व्यर्थ बताते हैं -

"झूठा जप तप झूठा ग्यानँ, राँम राम बिन झूटा ध्यानँ।
बिधि नखेद पूजा आचार, सब दरिया मैं वार न पार।।
इद्री स्वारथ मन के स्वाद, जहाँ साच तहाँ माँडै बाद।"(39)

सारा जप-तप झूठा है, सम्पूर्ण शास्त्र ज्ञान व्यर्थ है। राम की भक्ति के बिना समस्त ध्यान एवं साधना झूठी हैं। शास्त्रों के द्वारा निर्धारित विधि - निषेध, पूजा-आचार का कोई अन्त नहीं है। ये सब नदी में डुबा देने योग्य हैं। स्वार्थी व्यक्तियों ने इन्द्रियों के भोग एवं मन को प्रसन्न करने के लिए वादो और पूजा पद्धतियों का विकास कर रखा है।

2. मूर्ति-पूजा :-

कबीर कालीन समाज के लोग अशिक्षित थे। उन्हें उचित ज्ञान नहीं था। हिन्दु लोग पत्थर की मूर्ति को ही भगवान मान बैठे थे।

उस की पूजा ही लोग धर्म की इतिश्री मान बैठे थे । कबीर ने इसका भी विरोध करते हुए कहा -

" पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार ।
ताते यह चाकी भली, पीस खाय संसार।।" (40)

अगर पत्थर की मूर्ति पूजने से भगवान मिलते है तो मैं पर्वत पूजूँगा। इन मूर्तियों के पत्थर से तो घर की चक्की भली है, जिसका पीसा आटा लोग खाते हैं और जिन्दा रहते हैं।

कबीर मूर्ति-पूजा के विरोधक थे। मूर्ति-पूजा की निरर्थकता स्पष्ट करते हुए कबीर कहते हैं -

" पाँहण केरा पूतला, करि पूजैं करतार ।
इही भरोसै जे रहे, ते बूडे काली धार।।"(41)

पत्थर का पुतला करके उसी को भगवान मान कर उसी की पूजा करते हैं और इस पर भरोसा करते हैं वे भयानक प्रवाह में डूब जाते हैं। स्पष्ट है कि पत्थर कि हमें मुक्ति नहीं दे सकता। उसकी पूजा, अर्चना में लगे रहने से हम पवित्र बनते हैं यह हमारा भ्रम है। इसके विरुद्ध अगर हम सच्चे करतार या ईश्वर पर विश्वास करे उसका भरोसा करे तो मुक्ति पा सकते हैं।

आगे कबीर अन्य एक दोहे में इसी प्रकार के विचार स्पष्ट करते हैं-

" पाँहिन कूँ का पूजिए, जे जनम न देई जाब ।
आँधा नर आसामुषी, यौंही खोवै आब।।" (42)

पत्थर की पूजा करना व्यर्थ है। उस पत्थर को पूजने से क्या लाभ ? जो जीवन भर उत्तर ही नहीं देती है। विभिन्न प्रकार की आशाओं को लगाए हुए मनुष्य मूर्ति-पूजा कर-करके अपने आत्म-सम्मान को व्यर्थ ही नष्ट करता है।

पत्थर की मूर्ति नीर्जिव होती है। वह मनुष्य के काम नहीं आ सकती है। फिर भी लोग भ्रम में पडकर मूर्ति पूजा करते है, ऐसे लोगों

को कबीर तत्यता बताते हैं कि-

" भूली मालनि पाती तोड़ै , पाती पाती जीव ।
जा मूरति कौं पाती तोड़ै , सो मूरति नर जीव ।।
टाँचणहारै टाँचिया, दै छाती ऊपरि पाव।।
जे तू मूरति सकल है, तो धड़णहारे कौ खाव।।
लाडू लावण लापसी, पूजा चढ़ै अपार ।
पूजि पुजारा ले गया, दे मूरति कै मुहि छार।।" (43)

हे पुजारिन तू भ्रम में पड़ी हुई है। तू तनिक भी यह तो विचार कर की जगत का सचेतन जीव ही भगवान है। फूल-पत्ते तोड-कर तू इस जड मूर्ति के रूप में किसकी सेवा कर रही हैं। तू अज्ञान के कारण फूल और पत्ते को तोडती है। तू यह जानती है कि प्रत्येक पत्ते में जीव है अर्थात पत्तों को तोडकर तुम जीव-हिंसा करती हो। जिस पत्थर की मूर्ति के लिए वह फूल और पत्ते तोडती है वह तो निर्जीव है। जिस मूर्तिकार ने टाँकी से पत्थर को काट-काट कर मूर्ति को बनाया है, उसने कार्य-काल में इस मूर्ति की छाती पर पैर रख कर ही यह कार्य किया है। यदि यह मूर्ति सच्ची और शक्ति संपन्न होती तो सीने पर पैर रखनेवाले उस मूर्तिकार को अवश्य ही खा जाती। इस मूर्ति के ऊपर लडडू, मिठाई, लपसी आदि के रूप में बहुत ही पूजा का साहित्य चढाया जाता है। पुजारी इस मूर्ति की पूजा करके इस मूर्ति की आँखों में धुल झोंक कर इस समस्त पूजा-साहित्य को लेकर अपने घर जाता है। इस प्रकार कबीर बुत परस्ती अथवा अज्ञान जन्य मूर्ति पूजा का विरोध करते हैं।

कबीर ने मूर्ति-पूजा को ढोंग, दिखावा बताया है। वे कहते हैं कि-

"काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट।
पाँहनि बोई पृथमीं, पंडित पाडी बाट।।" (44)

यह संसार एक काजल की कोठरी के समान है। उसमें कालिमा युक्त कर्मों, कुकर्मों के किवाड लगे हुए है और पण्डितों ने अपना ढोंग रचकर सम्पूर्ण पृथ्वी को पत्थरों की मूर्तियों से ढक दिया है, ऐसा लगता है कि

ये उसी रास्ते से स्वर्ग जाने की तैयारी कर रहे हैं।

कबीर लोगों को कहते हैं कि मन का भ्रम मूर्ति-पूजा से दूर नहीं हो सकता है।

" सेवैं सालिगराँम कूँ, मन की भ्रांति न जाइ।
सीतलता सुपिनै नहीं, दिन दिन अधकी लाइ।।"(45)

पत्थर की बनी हुई मूर्ति की पूजा करने से मन का भ्रम दूर नहीं हो सकता, बल्कि और भी अधिक बढ जाता है। ऐसे मूर्ति पूजकों को स्वप्न में भी शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती है दिन प्रतिदिन अशान्ति की अग्नी अधिकाधिक तीव्रता से प्रज्वलित होती हैं।

कबीर के काल में लोग मूर्ति-पूजा करते थे। ये लोग मूर्ति-पूजा भ्रम और अज्ञान के कारण करते थे। इन सब लोगों का कबीर ने घोर विरोध किया और अपनी वाणी से मूर्ति-पूजा की व्यर्थता स्पष्ट की।

3. <u>माला फेरना</u> :-

माला पहनकर ढोंग करने वाले साधकों को कबीर कहते हैं -

" कबीर माला मन की, और संसारी भेष।
माला पहन्यौं हरि मिलै, तौ अरहट कै गलि देष।।"(46)

माला पहनने से ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती है। वास्तविक माला तो मन की होनी चाहिए और अन्य मालाएँ तो सब दिखावा ढोंग मात्र है। यदि माला के पहनने से ही प्रभु-प्राप्ति संभव होती तो रहट को क्यों न प्रभु प्राप्ति हो जाती, जिसके गले में हमेशा बाल्टियों की माला घूमा करती है।

माला फेरकर जप-जाप्य करने की निरर्थकता कबीर स्पष्ट करते हुए कहते हैं की -

"माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुँह माँहिं।
मनुवाँ तो दस दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहिं।:"(47)

माला तो हाथ में फिरती रहती है उस समय नाम-जप के लिए

जीभ मुख में फिरती रहती है और मन तो दसों दिशाओं में फिरता रहता है। यह तो ईश्वर-स्मरण, चिन्तन नहीं है। माला फेरना नाम-स्मरण करना यह तो दिखावा हुआ। सब से महत्वपूर्ण बात ईश्वर में मन-चित्त की एकाग्रता हैं और अगर यह न हो तो बाकी सब बातें व्यर्थ है।

आगे कबीर कहते हैं कि माला धारण करना निरर्थक है -

" माला पह-याँ कुछ नहीं, गाँठि हिरदा की खोइ ।
हरि चरनूँ चिप्त राखिये, तौ अमरापुर होइ ।।" (48)

जब तक हृदय के भीतर माया, मोह, राग और द्वेष की गाँठ न खोल दी जाय, तब तक माला धारण करने से कोई लाभ नही है। यदि हरि चरणों में चित्त को लगा रखा जाय तो अवश्य एक ना एक दिन भगवान की प्राप्ति होगी।

कबीर मन की माला में विश्वास रखते थे। मन की माला को फेरने से ही ईश्वर की प्राप्ति संभव है।

" माला पहरै मनमुषी, तायैं कछू न होइ ।
मन माला कौं फेरताँ, जुग उजियारा सोइ ।।"(49)

कबीर कहते हैं कि, मनुष्य माला को गले में पहनकर उसे व्यर्थ ही घुमाता रहता है किन्तु उसका मन बहिर्मुखी हो जाता है वह सांसारिक विषय वासनाओं में लिपटा रहता है। इस प्रकार की पूजा से उपासना से कोई लाभ नहीं है। यदि वह मन की माला को सच्चे हृदय से फेरे तभी उसका यह लोक और परलोक दोनों सुधरेगा।

4. <u>छापा-तिलक लगाना</u> :-

कबीर ने छापा-तिलक धारियों के प्रति अपने विद्रोही विचारों को स्पष्ट किया है। कबीर के समय में कुछ लोग छापा-तिलक को ही सर्वस्व मान बैठे थे। उन्हें फटकारते हुए कबीर कहते हैं -

"बैसनौं भया तौ का भया, बूझा नहीं बबेक।
छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक।।" (50)

केवल वैष्णव मत में दिक्षित हो जाने से ही प्रभु प्राप्ति नहीं होती है। यदि तू ने विवेक की ज्ञान की प्राप्ति नहीं की तो फिर वैष्णव मत

में दीक्षित होकर वैष्णव बन जाने से ही क्या लाभ हुआ ? छापा-तिलक आदि लगाकर अनेक लोग इस सांसारिक तापों में दग्ध होते रहते हैं । वास्तविकता तो यह है कि प्रभु वेषभूषा से नहीं वरन् सच्ची भक्ति से ही प्राप्त होते हैं।

कबीर ढोंगियों, तिलकधारियों के प्रति व्यंग्य करते हुए कहते हैं -

" कबीर इस संसार में, घणे मनिष मतिहीण ।
राम नाम जॉणैं नहीं आये टोपा दीन।।" (51)

इस संसार में अनेक मनुष्य बुद्धिहीन हैं वह राम नाम के वास्तविक तत्व को न जानकर तिलक आदि लगाकर ही ईश्वर-भक्त बनाना चाहते हैं और इस संसार को धोका देना चाहते हैं।

" कहा भयौ तिलक गरैं जपमाला,
मरम न जानैं मिलन गोपाला।।"(52)

हे साधक! यदि तुझे भगवान से मिलने के वास्तविक मार्ग का ज्ञान नहीं है, तो मस्तक पर तिलक लगाने से तथा गले में जप करने की माला धारण करने से क्या होता है ?

कबीर कहते हैं कि छापा - तिलक लगाकर भक्ति नहीं होती हैं। माला-तिलक-छाप आदि सब अमरी संसारी भेद हैं।

5. <u>स्नान करना</u> :-

कबीर ने तीर्थ में स्नान करना, गंगा स्नान आदि का भी निर्भिकता के साथ विरोध किया था। वे कहते हैं -

"रैनर कहा पषालै काया, सो तन चीन्हि जहाँ थैं आया।।
कहा विभूति जटा पट बाँधि, का जल पैसि हुतासन साधैं।।" (53)

हे मानव! तू इस शरीर को क्यों धो रहा है ? उस परम तत्व को जानने का प्रयत्न कर जहाँ से तेरा जन्म हुआ है। भस्म लगाने, जटा रखने तथा विशेष प्रकार के वस्त्र धारण करने से क्या होता हैं ? तीर्थों के जल में स्नान करने से अथवा पंचाग्नि में तपने से या हवन करने का

भी कोई उपयोग नहीं है। आगे कबीर कहते हैं कि -

" ज्यूँ दादुर सुरसुरी जल भीतरि, हरि बिन मुकति न होई।। " (54)

जैसे मेंढक सदैव गंगा जल के भीतर रहता है परन्तु केवल गंगा जल में ही रहने के कारण उसकी मोक्ष नहीं हो जाती है, इसी प्रकार केवल गंगा स्नान करते हुए भी ईश्वर के नाम-स्मरण के बिना मनुष्य को मुक्ति नहीं मिल सकती है ।

कबीर का स्पष्ट कहना था कि बाहरी दिखावा करने से कुछ नहीं होता। मनुष्य का मन शुद्ध और पवित्र होना चाहिए। मन की आंतरिक शुद्धता का उपदेश कबीर देते हैं -

" बिन ही प्रेम कहा भयौ रोयैं, भीतरि मैल बाहरि का धोये।।" (55)

जिसके अंतरमन में प्रेम नहीं उसकी पुकार भगवान नहीं सुनते हैं । यदि भीतर गन्दगी भरी हुई है तो बाहर से शरीर को धोने से क्या लाभ हो सकता है ?

उपासना के बाह्याचारों से मुक्ति नहीं मिलती उसके लिए हृदय से प्रभु-भक्ति की अवश्यकता होती है। कबीर कहते है -

" तीरथ करि करि जग मुवा, डूँघै पॉणी न्हाइ ।
राँमहि राम जपंतडाँ, काल घसीटयाँ जाइ ।।" (56)

अनेक प्रकार के तीर्थों के दर्शन करके और गंदले पानी में स्नान करके लोग मर जाते हैं। ऐसी व्यक्तियों को राम नाम का उच्चारण करते हुए भी मृत्यु घसीट कर ले जाती है क्योंकि राम नाम का उच्चारण ही होता है हृदय से उसका जप नहीं होता है।

6. <u>वस्त्र</u> :-

कबीर कहते हैं कि वस्त्र और शरीर की शुद्धता से आत्मा पवित्र नहीं होती है, बल्कि मन की शुद्ध ही सच्ची शुद्धता है। बाह्य स्वच्छता से संसार से मुक्ति नहीं मिल सकती हैं।

" काया मंजन क्या कर, कपड़ धोइम धोइ ।
उजन हूवा न छूटिए, सुख नींदडी न सोइ।।" (57)

तू कपडों को धो - धोकर शरीर को स्वच्छ कर रहा है किन्तु ऐसी सफाई से कोई लाभ नहीं है।

कबीर कहते हैं कि उपासना के वास्तविक मार्ग पर कुकर्मों के कारण साधक चल नहीं पाते हैं वे ऐश-आराम की जिन्दगी जिते हैं। -

" स्वाँग पहरि सोरहा भया, खाया पीया खूँदि।
जिहि सेरी साधू नीकले, सो तौ मेल्ही मूँदि ।।" (58)

हे कपटी साधक! तू रंगी-बिरंगी कपडों को ही पहन कर आनंद के साथ खा-पीकर मौज उडाता रहा, किन्तु जिस मार्ग से होकर साधु जाते हैं अपने कुकर्मों के कारण तूने उस मार्ग को अपने लिए बन्द कर लिया है। उस पर तू चल ही नहीं सकता।

बाहय वेष-भूषा एवं करनी में साम्य न होने पर वह साधु नहीं असाधु होता है। वे कहते है कि इन लोगों ने वेष तो वैरागी के समान बनाए है लेकिन वे पाप कर्म प्रवृत्त हैं। ऐसे साधु जो केवल बाहयावरण से ही साधु दिखाई देते हैं पर अन्त:करण में अत्यन्त असाधु या नीच होते हैं। इसी कारण किसी की उज्ज्वल वेश-भूषा को देखकर उसके उज्ज्वल मन का होने का विश्वास नहीं करना चाहिए-

" उज्जल देखि न धीजिये, बग ज्यूँ माँडै ध्यान।
धोरै बैठि चपेटसी, यूँ ले बूडैं ग्यानँ।।"(59)

जिस प्रकार श्वेत रंग का बगुला मछली पकडने के लिए ध्यानस्त बैठा रहता है और अवसर आने पर मछली को दबोच लेता है। वैसे ही कोई बग-ध्यानी हो जो अवसर आने पर मछली के समान ही तुम्हें दबोच लेगा और समस्त ज्ञान तथा विवेक को भी डुबा देगा। इस लिए तुम किसी का उज्ज्वल वेश देख कर विश्वास मत रखो।

कबीर का कहना था कि स्त्री यदि सोलहों शृंगार करके प्रिय के सम्मुख जाय और फिर भी वह प्रिय को अच्छ न लगे तो उसकी साज-सज्जा, वेश-भूषा से क्या लाभ ?

" नवसत साजे कॉमनीं, तन मन रही सँजोइ ।
पीव कै मनि भावै नही, पटम कीयें क्या होइ।।" (60)

बाहय वेषभूषा को धारण करने से कोई लाभ नहीं है। जिसमें ब्रह्म प्राप्ति न हो सके या जो बाहय वेषभूषा प्रभु को अच्छी ही न लगे उसको धारण करने से क्या लाभ ? भगवान को प्राप्त करने के लिए तो हृदय की तल्लीनता आवश्यक है।

" कैसे तूँ हरि को दास कहायौ, ✓
करि बहु भेषर जनम गँवायौ।।
सुध बुध होइ भज्यौ नहि साँई काछ्यौ डयँभ उदर के ताँई।।"(61)

कबीर कहते हैं कि साधु का वेष धारण करके अपने आप को भक्त कहनेवाले प्राणी ! तुम अपने आप को भगवान का भक्त क्यों कर कहलाते हो ? तुमने तो तरह-तरह के अनेक वेष धारण करके अपना सम्पूर्ण जीवन नष्ट कर दिया है। तुमने कभी भी शुद्ध बुद्धि द्वारा भगवान का भजन नहीं किया। तुम तो उदरपूर्ति के निमित्त केवल पाखण्ड करके अनेक वेष धारण करते रहे हो। तेरे हृदय में कपट है और तुमने भगवान से कभी सच्चा प्रेम नहीं किया है।

7. <u>शास्त्र पठन तथा नामस्मरण</u> :-

कबीर का विरोध धर्म ग्रंथों के पठन से नहीं था। उनका विरोध उन व्यक्तियों के प्रति था, जो धर्मग्रंथों के सैद्धान्तिक पक्ष की उपेक्षा करते थे और बाहयाचारों के नाम पर जनता को फँसा रहे थे। कबीर कहते हैं कि -

" का पढ़िये का गुनियें, का बेद पुराना सुनियें ।।
पढ़े गुनें मति होई, मैं सहजैं पाया सोई ।।"(62)

पढ़ने और मनन करने से क्या होता है ? वेद-पुराण सुनने से क्या होता है ? पढने और मनन करने से मतवाद रूपी अहंकार उत्पन्न हो जाता हैं और तब परमतत्व का साक्षात्कार संभव नहीं होता है। उसका

साक्षात्कार मुझको तो सहज भाव से हो गया है।

" छह दरसन छयानवै पाषंड, आकुल किनहूँ न जानाँ।।
जप तप संजम पूजा अरचा, जोतिग जग बौरानाँ।
कागद लिखि लिखि जगत भुलानाँ, मनहीं मन न समानाँ।।" (63)

कबीर बेद, शास्त्र, षटदर्शन आदि को पाखण्ड मानते थे।- वे कहते हैं कि षटदर्शनों एवं विविध शास्त्रों में प्रभु की खोज में व्यग्रता पूर्वक बडे प्रयत्न किए गये हैं परन्तु कोई भी उन परम प्रभु को ठीक तरह से नहीं जान पाया। उसी के जानने के लिए संसार जप, नियम, संयम, पूजा, आर्चना, ज्योतिष, आदि विभिन्न कामों में पागल हो रहा है। उस के निस्मण में ग्रंथ के ग्रंथ लिख कर लोग मन ही मन फूले नहीं समाते हैं। परन्तु वे सब इधर उधर भटक ही रहे हैं। इसमें किसी को भी वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं है।

वेद, पुराण, शास्त्र आदि को पढ़ने वाले लोगों को कबीर कहते हैं कि -

" बेद पुरान पढ़त आस पाँडे, खर चंदन जैसें भारा ।
रामँ नामँ तत समझत नाँही, आंति पड़ै मुखि छारा।।" (64)

हे पाण्डेय जी ! तुमने समस्त वेदों और पुराणों का अध्ययन तो कर लिया, परन्तु उस समय परम तत्व को नहीं जाना। तुम तो उस गधे के समान हो जो अपनी पीठ पर चन्दन की लकडियों का गट्ठा लादे फिरता है। परन्तु उसके शरीर से चन्दन की सुगंध नहीं आती है।

नामस्मरण के सम्बन्ध में अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए कबीर कहते हैं कि बाहय रूप से दिखावे के लिए राम नाम के जपने से कुछ भी लाभ नहीं होता। कबीर कहते हैं -

" करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि तूँड ।
जाँणैं बूझै कुछ नहीं, यौं ही आँधाँ रूँड ।।" (65)

बाहयरूप से ही राम नाम की रट लगाने से कुछ नहीं होता, जब तक हृदय से उसकी भक्ति नहीं होती हैं। जो व्यक्ति राम नाम का कीर्तन,

बिना उसके महत्व को समझे हुए मुँह उठा-उठा कर ऊँचे स्वर में करते हैं वह वास्तविकता तो कुछ नहीं जानते बुझते हैं अंधें रूंड के समान बिना सिर के शरीर के नीचे के भाग के समान इधर उधर डोलते हैं।

कबीर कहते हैं कि केवल नामोच्चारण से ईश्वर की भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है। उसके लिए सदाचरण की साधना आवश्यक हैं -

" पंडित बाद बदंते झूठा।
राँम कह्याँ दुनियाँ गति पावै, षाँड कह्याँ मुख मीठा।।
पावक कह्याँ पाव जे दाझै, जल कहि त्रिषा बुझाई।
भोजन कहाँ भूष जे भाजै, तौ, सब कोई तिरि जाई।।"(66)

हे पण्डितों ! तुमको भगवान के स्वरूप की अनुभूति तो नहीं हुई है, तुम केवल तर्क करके नामोच्चारण के द्वारा राम से उपलब्ध आनंद की प्राप्ति करना चाहते हो । तुम्हारा यह प्रयत्न एकदम झूठ एवं व्यर्थ हैं। तुम्हारे अनुसार राम नाम का कीर्तन करने से लोगों को मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। यदि ऐसा हो तो शक्कर के नामोच्चारण से मुँह मीठा हो जाना चाहिए, केवल आग पुकारने से पैर जल जाने चाहिए, केवल पानी-पानी चिल्लाने से प्यासे की प्यास बुझ जानी चाहिए और बिना भोजन खाए ही भूख मिट जानी चाहिए। वस्तु का वास्तविक भोग किये बिना ही यदि उसके द्वारा प्राप्त होने वाले रस का अस्वादन किया जा सकता है तो अवश्य ही राम नाम के उच्चारण मात्र से संसार के प्राणी भावसागर से पार जा सकते हैं।

शास्त्र पठन के संदर्भ में कबीर और एक जगह पर कहते हैं -

" पोथी पढ़ि - पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोइ ।
ढाई आक्षर प्रेम का, पढै सो पण्डित होइ ।।"(67)

कबीर पाण्डित्य को बेकार समझते थे जो केवल ज्ञान का बोझ ढोना सिखाता है, जो मनुष्य को जड बना देता है और भगवान के प्रेम से वंचित करता है।

इस प्रकार कबीर ने बाह्याडम्बरों का विरोध किया है।

8. मुंडन तथा बाल बढाना:-

कबीर काल में बाल मुंडने की और बाल बढाने की पद्धति चल रही थी। इसका विरोध कबीर ने अपने पदों और दोहों में किया हैं। वे कहते हैं कि सिर और मूछों को मुंडवा कर सांसारिक ढोंगियों के साथ चलने से कोई लाभ नहीं, ईश्वर-प्राप्ति के लिए तो सच्चे उपासक की भाँति आचरण करना चाहिए। ऐसे लोगों को फटकारते हुए कबीर कहते हैं -

" केसौं कहा बिगाड़िया, जे मूँडै सौ बार ।
मन कौं काहे न मूँडिए, जामैं बिषै बिकार।।" (68)

कबीर सिर मुंडाने के पक्ष में न होकर मन को विषय वासनाओं से अलग करने के पक्ष में हैं। बालों ने तेरा क्या बिगाडा है जो तू इनको बार-बार मुंडवाता रहता है। वास्तव में तू मन को क्यों नहीं मुंडवाता जिसमें नाना प्रकार की सांसारिक विषय वासनाएँ भरी हुई हैं ?

कबीर के जमाने में नग्न पंथियों तथा मुंडन करने वालों का प्रचलन था। उन्हें फटकारते हुए उनकी रहन-सहन की आलोचना करते हुए कबीर कहते हैं -

" नागें फिरे जोग जै होई, बन का मृग मुकुति गया कोई।
मूँड-मुँडाये जौ सिधि होई, स्वर्ग ही भेड़ न पहुँची कोई।।"(69)

नग्न फिरने से अगर योग साध्य होना तो बन में रहने वाले मृग [जानवर] को कब की मुक्ति मिल गयी होती। उसी प्रकार अगर सिर्फ मुंडन करने से सिद्धि प्राप्त होती, तो भेड़-बकरियाँ कब की स्वर्ग गयी होती।

कबीर कहते हैं कि सिर मुंडवाने की उतनी अवश्यकता नहीं है जितनी मन को विषयों से अलग करने की है।

" मन मैंवासी मूँडि ले केसौं मूँडे काँइ ।
जे कुछ किया सु मन किया, केसौं कीया नाँहि।।" (70)

SHIVAJI UNIVERSITY * KOLHAPUR

हे ढोंगी साधु ! तू बार-बार सिर ही क्यों मुंडवाया करता है। मनस्मी मदमस्त डाकू को मूंड कर क्यों नहीं स्वच्छ करता। जो भी कुछ पाप कर्म किए हैं वे सभी मन ने किए हैं बालों ने कुछ भी नहीं किया, हैं फिर उनकी सफाई से कुछ लाभ नहीं है।

कबीर कहते हैं कि अगर मन ही नाना प्रकार के माया जाल में फँसा हुआ है, तो सिर को मुंडवाते हुए मनुष्य की पूरी जिन्दगी क्षीण होती जाय तब भी ईश्वर की प्राप्ति संभव नहीं है।

सब लोगों और प्राणियों के प्रति मनुष्य को समान भाव से आचरण करना चाहिए।

" साँईं सेंती साँच चलि, औराँ सूँ सुध भाइ।
भावै लंबे केस करि, भावै घुरड़ि मुड़ाइ ।।" (71)

कबीर कहते हैं कि हे जीव! तू परमात्मा के साथ सत्य का आचरण कर और साथ ही अन्य प्राणियों के साथ भी तू सरल भाव से आचरण कर और उसके बाद चाहे तू लम्बे-लम्बे बाल बढा ले और चाहे सिर मुंडवा ले। इस प्रकार से कबीर से ने बाल बढाने वाले और बालों का मुंडन करने वाले लोगों की खिल्ली उड़ाई है।

9. <u>तीर्थ यात्रा</u> :-

कबीर के काल में लोग बाह्याचारों में फँसे हुए थे, ईश्वर प्राप्ति के लिए ये लोग अनेक पवित्र तीर्थ स्थानों पर जाकर पूजा-अर्चा करते हुए बैठे थे। यह सब बातें अंध विश्वास के कारण होती थी। कबीर का कहना था कि ईश्वर तो अपने हृदय में होता है उसे तीर्थाटन करके बाहर ढूंढने की आवश्यकता नही हैं -

" जिस कारनि तटि तीरथि जाँही, रतन पदारथ घटही माहीं।
पढ़ि पढ़ि पंडित बेद बषाँणै, भीतरि हूती बसत न जाँणैं।।" (72)

जिस परमात्मा की प्राप्ति के लिए लोग तीर्थों को जाते हैं यह परमतत्व परमेश्वर रूपी श्रेष्ठ पदार्थ तो सबके शरीर में हृदयस्थ ही

होता है। पण्डित लोग विविध ग्रंथो को पढ़-पढ़कर आत्म-ज्ञान वेद का वर्णन करते हैं, परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि वे यह नहीं जानते हैं कि उनके द्वारा उपदिष्ट ब्रह्म उनके हृदय के भीतर ही निवास करता है। कबीर बाहय साधनों के विरोध के साथ पंडितों के थोथे ज्ञान पर तीखा व्यंग्य करते हैं।

तीर्थों और पवित्र स्थानों पर भटकते - भटकते सारा जीवन बीता देने पर भी ईश्वर प्राप्ति असंभव है। यहीं भाव कबीर ने यहाँ पर व्यक्त किया है -

" हज काबै हौ है गया, केती बार कबीर ।
मीराँ मुझ में क्या खता, मुखाँ न बोलै पीर।।" (73)

मैं हज्ज और काबा कितनी बार आया, गया यात्रा की, फिर भी न जाने क्यूँ किस भूल अपराध के कारण पीर मुझ से नहीं बोलता।

कबीर कहते हैं कि सभी तीर्थ स्थान और योग की क्रियायें शरीर में ही विद्यमान हैं।

" मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाँणि।
दसवाँ द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिछाँणि ।।" (74)

हे मनुष्यों! मन में ही मथुरा है और दिल में द्वारिका और शरीर को ही पवित्र काशी नगरी समझो, जिसमें ब्रहमांड ही इस शरीर रुपी मन्दिर का दरवाजा है, इसलिए उसमें प्रज्ज्वलित निरंजन पुरुष की ज्योति को पहिचानना ही श्रेयस्कर हैं।

इस प्रकार से कबीर ने तीर्थ यात्रा करनेवाले लोगों की निंदा की है।

10. श्राद्ध :-

श्राद्ध आदि बाहयाडम्बर की भी कबीर ने आलोचना की है। उनका कहना हैं कि श्राद्ध करके सचमुच ही पिता के प्रति पुत्र के प्रेम की यह बिडम्बना मात्र है। वे कहते हैं कि -

" ताथै कहिये लोकाचार, बेद कतेब कथैं ब्यौहार।।

DR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

जारि बारि करि आवै देहा, मूँवाँ पीछैं प्रीति सनेहा।।
जीवत पित्रहि मारहि डंगा, मूँवाँ पित्र ले घालैं गंगा।।
जीवत पित्र कूँ आन न खवाँवैं, मूँवाँ पाछैं ष्यंड भरावैं।।
जीवत पित्र कूँ बोलैं अपराध, मूँधाँ पीछै देहि सराध ।।
कहि कबीर मोहि अचिरज आवै, कऊवा खाइ पित्र क्यूँ पावै।।"(75)

बाह्याचार केवल दम्भ प्रेरित होते हैं। इससे उनकी बातों को केवल लोकाचार कहा जाना चाहिए। व्यक्ति अपने सम्बधियों के मृत शरीर को जलाकर उसका चिह्न तक मिटा देते हैं और फिर उसके बाद रो - धोकर उसके प्रति अपनी प्रीति प्रकट करते हैं। पुत्र जीवित पिता को लाटी से मारता है और मरने पर उसकी अस्थियों को गंगा के जल में डालने के लिए पहुँचता है। जीवित पिता को तो भोजन भी नहीं देता है और मरने पर पिण्डदान का दिखावा करता है। जीते जी पिता को अनेक दोष देता है, उसके प्रति कटु शब्द कहता है और मरने पर श्राद्ध के नाम पर श्रद्धा की अभिव्यक्ति का स्वांग करता है। कबीर कहते हैं कि इन समस्त बाह्याचारों को देख कर मुझे आश्चर्य होता है। कौअे श्राद्ध के जिस अन्न को खाते हैं उसे पितृगण कैसे प्राप्त कर सकते हैं ?

इस प्रकार से कबीर ने हिन्दु समाज के जिस क्षेत्र में बाह्याडम्बर या धर्माडम्बर प्रचलित था। उनका विरोध किया और लोगों को उन्हें छोड कर धर्म के यथार्थ स्वरूप को पहचानने तथा तदनुरूप आचरण करने पर बल दिया था।

ब. मुसलमानों के बाह्याडम्बर :-

जिस प्रकार से कबीर ने हिन्दुओं के बाह्याडम्बरों का विरोध किया था, वैसे ही मुसलमान समाज के बाह्याडम्बरों का भी उतना ही विरोध किया था। कबीर ने मुसलमानों के सुन्नत, हज्ज, काबा, अजान, कुर्बानी, नमाज आदि की खिल्ली उडाई हैं। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

1. सुन्नत :-

मुसलमान लोग सुन्नत करके अन्याय करते थे उन्हें कबीर कहते हैं -

" जौर खुदाई तुरक मोहि करता, तौ आपै कटि किन जाई।।
हौं तौ तुरक किया करि सुनति, औरति सौं का कहिये।
अरध सरीरी नारि न छूटै, आधा हिंदू रहिये ।।
छाड़ि कतेब रॉम कहि काजी, खून करत हौ भारी। " (76)

जबरदस्ती अथवा प्रेम के साथ पकड कर मुसलमान लोग सुन्नत कर देते हैं, मैं उनकी महिमा को स्विकार नहीं कर सकता हूँ ? खुदा मुझे अगर मुसलमान बना देता तो मेरी सुन्नत अपने आप हो जानी चाहिए थी। और ऐसा मान भी लिया जाय कि सुन्नत करके तुम मुझे मुसलमान बना दोगे, परंतु औरत के बारे में तुम क्या करोगे ? औरत की सुन्नत तो नहीं होती। तो क्या औरत मुसलमान हो ही नहीं सकती ? सुन्नत न हो सकने के कारण औरत मुसलमान नंही हो पाती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि मानव समाज स्मी शरीर का आधा भाग अपने हिन्दुपन को नहीं छोड पाता हैं। इस प्रकार समस्त पुरुषों को मुसलमान बना देने पर भी आधा समाज तो हिन्दु ही बना रहेगा। हे काजी ! तुम कुफ्र के नाम पर बाह्योपचार की बाते करना बन्द कर दो और राम का नाम ले। तू व्यर्थ ही सुन्नत कर खून बहाता है अथवा धर्म-परिवर्तन करा के अन्याय करता है।

2. जीव - हत्या :- [कुरबानी - हलाल]

मुसलमानों के कुरबानी, हलाल आदि का कबीर ने कडे शब्दों में घोर विरोध किया है। मुसलमान गो-हत्या करके उसका मांस भक्षण करते थे। उनको वह सबक सिखाने का प्रयत्न करते हैं -

" तुरकी धरम बहुत हम खोजा, बहु बजगार करै ए बोधा।।
गाफिल गरब करै अधिकाई, स्वारथ अरभि बधै ए गाई।।
जाकौ दूध धाई करि पीजै, ता माता कौं बध क्यूँ कीजै।।

लहुरैं थकैं दुहि पीया खीरो, ताका अहमक भकै सरीरो।।"(77)

कबीर कहते है कि मैने मुसलमान धर्म के सच्चे अनुयायियों की बहुत खोज की है। ये लोग जान-बुझकर अनेक अनुचित कार्य करते हैं। ये धर्म के अहंकार में मदहोश रहते हैं और स्वार्थ के वशीभूत होकर गाय की हत्या करते है। माता के समान जिसके दूध को पिया जाता है, उस गाय का वध क्यों किया जाना चाहिए। छोटे बच्चे तथा वृद्ध व्यक्ति जिसका दूध पीते हैं, उसी गाय के शरीर को मूर्ख व्यक्ति खाते हैं। वे मूर्ख लोग ज्ञान की बात को नहीं जानते है। परन्तु अपने ज्ञान के अहंकार में भूले हुए रहते हैं। इस प्रकार कबीर ने गो - हत्या और मांस भक्षण का विरोध किया है।

कबीर जीव हिंसा के घोर विरोधी थे। वे कहते हैं कि -

" जीव बधत अरु धरम कहत हौ, अधरम कहाँ है भाई।
आपन तौ मुनिजन हूवै बैठे, का सनि कहौं कसाई।।" (78)

तू जीव की हत्या करता है और कहता है कि यह धर्म के अनुसार है। हे भाई ! यदि यह भी धर्म है तो फिर अधर्म किसको कहेंगे ? जीव-हिंसा करने वाला तू अपने आप को सिद्ध धर्मगुरू मानता है तब फिर मैं कसाई किसको कहूँगा ?

कबीर हिंसा विरोधी होने के कारण जीव-हत्या को ईश्वरीय अपराध मानते थे। कबीर जीव - हत्या एवं मांसाहार के कट्टर विरोधी थे। इसलिए उन्होंने अधिकांश मुसलमानों की बहुत भर्त्सना की है -

" बकरी पाति खात है ताकी काढी खाल।
जे जनर बकरी खात हैं तिनके कौन हवाल।।
दिन कौ रोजा रहत है। रात हनत हौ गाय।
यह तो खून वह बन्दगी कैसे खुसी खुदाय।।" (79)

कबीर हिन्दु और मुस्लिम धर्म में प्रचलित हिंसा वृत्ति को दूर करना चाहते थे। वे काजी, सैय्यद, औलिया, पीर आदि को डाँटते हुए पूछते हैं कि दिन भर तो रोजा रखते हो और रात में गाय खाते

हो। भला तुम्हारा खुदा किस प्रकार से इस प्रकार के आचरण पर प्रसन्न होगा।

कबीर जीव-हिंसा को ईश्वरीय अपराध मानते हैं। वे कहते हैं -

" कुकडी मारै बकरी मारै, हक हक हक करि बोलै।
सबै जीव साँई के प्यारे, उबरहुगे किस बोलै ।।" (80)

सभी शरीरधारियों में जब तू उस परमात्मा को व्याप्त मानता है तब फिर वध्य जीव को अपने से भिन्न मानकर तू मुर्गी मारता है, बकरी मारता है और सत्य - सत्य करके बोलता है अर्थात धर्म और ईश्वर की बाते बढ-बढ कर करता है। समस्त प्राणी स्वामी के प्यारे है उनकी हत्या करके तुम क्या बात बनाकर अपना उद्धार कर सकोगे ? इस प्रकार कबीर ने जीव - हिंसा, [कुरबानी, हलाल] आदि का घोर विरोध किया है।

3. हज्ज - काबा :-

मुसलमान लोग अज्ञान वश हज और काबे जाते थे उन्हें कबीर कहते हैं -

" सेष सबूरी बाहिरा, क्या हज काबै जाई।
जिनकी दिल स्याबति नहीं, तिनकौं कहाँ खुदाई।।" (81)

ईश्वर की प्राप्ति के लिए भ्रम और संशय का त्याग अवश्यक है। हे शेख ! तू सन्तोष से परे है फिर तेरे हज्ज और काबे जाने से कोई लाभ नहीं है जिनका हृदय सच्चा नहीं है उन्हें ईश्वर कहीं भी प्राप्त नहीं होता।

4. नमाज :-

कबीर ने नमाज पढ़ना आदि बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। यहाँ उन्होंने इसी बात को मुसलमानों के प्रति कहा है -

" पढ़ि ले काजी बंग निवाजा, एक मसीति दसौं दरवाजा।।

मन करि मका कबिला करि देही, बोलनहार जगत गुर येही।।" (82)

कबीर काजी को कहते हैं कि वह मस्जिद में पढ़ी जानेवाली नमाज को छोड दे और मैंने बताये हुए सच्चे नमाज को पढ। हे काजी। तुम मेरी बात मान लो। तेरा यह शरीर भी मस्जिद है, जिसमें दस द्वार है। इसी में बैठकर बाँग दे अथवा नमाज पढ ले मन को मक्का बना डाल, शरीर को कर्बला कर ले तथा हृदयस्थ ब्रह्म को अपना गुरू मान ले।

5. अजान :-

मुसलमान मस्जिद में जाकर जोर-जोर से बाँग देते हैं। खुदा की इबादत करते हैं। इस बाहयाडम्बर पर कबीर ने कटु व्यंग्य किया है। अजान के सम्बन्ध में वे कहते हैं -

" मुल्ला मुनारे क्या चढहिं साँइ न बहरा होइ।
जाँ कारेन तू बाँग देहि दिल ही भीतर सोई।।" (83)

" काँकर पाथर जोरिकर मस्जिद लया चिनाय।
ता चढि मुल्ला बाँग दै, क्या बहिरा हुआ खुदाय।।"(84)

कबीर के मतानुसार पाक दिल से खुदा की इबादत करना, दुआँ माँगना, सच्ची प्रार्थना है। खुदा तो दिल के भीतर ही है। वे कहते हैं अरे मुल्ला। अनेकों पत्थर, कंकड जोड-जोड के तूने मस्जिद बनवा ली और उस पर चढ़ कर जोर-जोर से तू बाँग देता है, क्या तेरा खुदा बहरा है ? ईश्वर तुम्हारे अंत:करण में ही हैं। अत: उसे चिल्लाकर पुकारने की अवश्यकता नहीं। कहने का भाव यह है कि मन से ईश्वर का चिन्तन करो, उसका दिखावा करने की कोई जरूरत नहीं।

" चिऊँटी के पग नेवर बाजे, सो भी साहब सुनता है।
मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारै, क्या साहब तेरा बहिरा है ?"(85)

इस प्रकार कबीर ने मुसलमानों के बाहयाडम्बरों का अपनी कटु वाणी के द्वारा विरोध किया है।

इस तरह से कबीर मध्यकालीन भारत के अग्रगामी मानवतावादी कवि है। कबीर से आज भी अंधविश्वासों एवं बाह्याडम्बरों में ग्रस्त भारतीय समाज बहुत कुछ प्रकाश पा सकता है। इस रूप में कबीर सचमुच आधुनिक है। सत्य तो यह है कि जब तक भारतीय समाज कबीरकालीन सामाजिक रूढियों, जाति-प्रथा, ऊँच-नीच का भेद, हिन्दु-मुस्लिम वाद, मिथ्याडम्बरों पर विश्वास आदि से मुक्त नहीं होता और इसके लिए कबीर के पथ-प्रदर्शन की अपेक्षा रखता है, तब तक कबीर आधुनिक है, युगानुकूल है, युगप्रवर्तक एवं युग सुधारक है, समाज की समस्याओं के समाधाता हैं। कहने की आवश्यकता नहीं आदर्श सदैव यथार्थ से भिन्न होता है और इस रूप में जब तक कबीर का आदर्श यथार्थ नहीं बन जाता तब तक कबीर सामाजिक है, वर्तमान संदर्भ से जुडे हैं।

ई. <u>अंधविश्वास के संदर्भ में विद्रोह</u> :-

मनुष्य के मन में विभिन्न कारणों से आयी निराशा और ढहते आत्म-विश्वास, अंधविश्वास के फलने फूलने का प्रमुख कारण है। दर असल श्रद्धा कहाँ खत्म होती है और अन्धविश्वास कहाँ शुरू होता है , इसकी सीमा रेखा निश्चित करना बडा कठिन है।

कबीर का युग अंधानुकरण एवं अंधविश्वास का था। लोग धर्म का पालन हृदय से नहीं, भय से किया करते थे। इसलिए कबीर ने मिथ्याचार और बाह्याडम्बरों पर करारा व्यंग्य किया, उनका खण्डन किया। समाज में सात्विकता और आचरण-प्रवणता का प्रचार किया। ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया मांस-भक्षण, मद्यपान का निषेध किया। क्रोध, तृष्णा, कपट, आदि कुप्रवृत्तियों का विरोध किया। सरलता हृदय की निष्कपटता, मन की शुद्धता आदि का प्रचार किया और सबसे बडा कार्य किया, वह समाज में साम्यवाद की प्रतिष्ठा का। समाज में ऊँच-नीच, ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, वैष्य आदि के भेद-भाव को आश्रय देनेवालों की अच्छी खबर ली, और दृढता से उसकी निरर्थकता सिद्ध की। उनका दृढ विश्वास था कि शान्ति तभी मिल सकती है जब मनुष्य में समदृष्टी आ जाती है ।

कबीर का साम्यवाद तो एक ओर इस्लामिक साम्यवाद से प्रभावित प्रतीत होता है और दूसरी ओ हिन्दुओं के अद्वैतवादी आध्यात्मिक साम्यवाद से भी अनुप्राणित है। कबीर का धर्म समाज सापेक्ष था। " वे व्यष्टिवादी से अधिक समष्टिवादी थे। इस विराट प्रतिमा की अंतर्दृष्टि जितनी खुली हुई थी, बाह्य दृष्टि भी उससे कम जागरूक न थी। उन्होंने यह आँख खोलकर देखा था, कि समाज रूढियों, धर्माडम्बरों तथा परम्पराओं और अंधविश्वासों की निर्मम चक्की में पिस रहा है, उसकी आत्मा इनकी कारा में बंदिनी है।" (86)

कबीर ऐसे समय में निर्माण हुये थे, जब समाज में अनेक प्रकार के अन्धविश्वास फैल चुके थे। विशेषता तीर्थ सेवन एवं काशी मरण में मुक्त, विषयक अंधविश्वास प्रचलित थे उसको दूर करने का प्रयास कबीर ने अपनी कठोर वाणी से किया। डॉ. रामलाल और रामचंद्र वर्मा कबीर के बारे में लिखते हैं -
" कबीर ने सभी रूढियों, आडम्बरों और पाखण्डों का खुलकर खण्डन करके समाज में निरन्तर चलनेवाली हलचल पैदा कर दी। 'मसि - कागज' को न छूनेवाले कबीर ने काशी के पण्डितों, मुल्लाओं और काजियों को जिस साहस और निर्भिकता के साथ ललकारा, वह इतिहास की अभूतपूर्व घटना थी। " (87)

कबीर के काल में तीर्थों, तीर्थस्थानों की यात्रा करना और वहाँ निवास करना संसार के प्राय: सभी धर्मों का अंग माना जा रहा था। भारत देश धर्म प्रधान होने के कारण अति प्राचीन काल से आध्यात्मिक महत्व के स्थानों पर श्रद्धा और भक्ति की भावना प्रतिष्ठित रही है, जो कि सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय सभी पक्षों को स्पर्श करती है। अत: भावनागत संस्कार की उपयोगिता के दृष्टिकोण से सभी सम्प्रदायों के केंद्र तथा उनके प्रवर्तकों के जीवन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण स्थल तीर्थ स्थान बनते गये। किन्तु समकालीन अन्य मान्यताओं की भाँति इस युग में इसमें रूढता का समावेश होने के कारण मिथ्याडम्बर, स्वैराचार, आदि को स्थान मिल गया, जिसके कारण इन साधकों को इस आस्था पर भी प्रहार करना पडा।

कबीर के समय में लोग तीर्थ का सेवन करते थे इसको कारण है कि उन्हें विश्वास था कि तीर्थ सेवन से भगवान की प्राप्ति संभव है। ऐसे लोगों को कबीर बताना चाहते हैं -

" कबीर खाई कोट की, पाँणी पिवै न कोइ।
जाइ मिलै जब गंग मैं, तब सब गंगोदिक होइ।।" (88)

आस-पास से निकलनेवाली गन्दी नाली का पानी कोई भी नहीं पीता है। लेकिन वहीं पानी जब गंगा में जाकर मिलता है तो गंगाजन बन जाता है। इसका सब लोग श्रद्धा के साथ पान करते हैं।

कबीर मानते थे कि ईश्वर घट - घट में बसा हुआ है उसे इधर उधर ढूंढने की अवश्यकता नहीं है। लेकिन लोग व्यर्थ ही उसे द्वारिका, मथुरा, काशी, आदि तीर्थ स्थानों में जाकर ढूंढते है यह सब व्यर्थ है। ऐसे लोगों को फटकारते हुए कबीर कहते हैं कि-

" मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाँणि।
दसवाँ द्वारा देहूरा, तामैं जोति पिछाँणि ।।" (89)

हे मनुष्यों ! मन में ही मथुरा है और दिल में द्वारिका और इस शरीर को ही पवित्र काशी नगरी समझो जिसमें ब्रह्मांड ही इस शरीररूपी मन्दिर का दरवाजा है इसलिए उसमें प्रज्ज्वलित निरंजन पुरुष की ज्योति को पहिचानना ही श्रेयष्कर है। कबीर इसके द्वारा यही कहना चाहते थे कि सब धर्मान्ध लोगों को तीर्थादि स्थानो पर जाने की जरूरत नहीं क्योंकि सभी तीर्थ स्थान और योग की क्रियायें शरीर में ही विद्यमान है।

जप-तप, तीर्थ आदि पर विश्वास करने वालों की गति कबीर ने तोता के समान प्रतिष्ठित की है -

" जप तप दीसैं थोथरा, तीरथ ब्रत बेसास।
सूवै सैंबल सेविया, यौं जग चल्या निरास।।" (90)

कबीर कहते हैं कि जप-तप, तीर्थ व्रत एवं विभिन्न देवताओं में विश्वास सब कुछ व्यर्थ हैं। इनके ऊपर आश्रित व्यक्ति अंत में उसी प्रकार निराश होता है जैसे तोता सेंवल के फल के ऊपर आश्रित रहकर निराश होता है। सेंवल एक वृक्ष-विशेष है जिसका फल बड़ा आकर्षक होता है, तोता अपनी चोंच मारकर उसे फोड़ता है तो वह रुआ बन कर उड़ जाता है और मात्र खोखला बचता

है। इस साखी के द्वारा कबीर लोगों को यह कहना चाहते हैं कि जप-तप आदि पर विश्वास करने वालों को निराशा ही हाथ लगती है।

कबीर ने अपनी साखी में तीर्थ-व्रत आदि के व्यर्थ आडम्बरों को जंगली बेल के समान निरूपित किया है -

" तीरथ त सब बेलडी, सब जग मेल्या छाई।
कबीर मूल निकंदिया, कौंण हलाहल खाइ।।" (91)

तीर्थ-व्रत आदि बाहयाडम्बर सब जंगली बेल के समान है जो समस्त संसार पर छाकर उसे अपने प्रभाव में किये हुए हैं। कबीर ने इस मिथ्या बाहयाचार रूपी लता को समूल ही नष्ट कर दिया है भला उसके विषाक्त फलों को कौन खाता ? भाव यह है कि बाहयाचार से उत्पन्न दु:खों और कष्टों को कौन भोगे ? कबीर कहते है कि उस पूर्ण परमेश्वर को मैं हृदय से नमन करता हूँ। मैं न पूजा करता हूँ और न नमाज -

" पूजा करूँ न निमाज गुजारूँ, एक निराकार हिरदै नमसकारूँ।
नाँ हज जाँऊँ न तीरथ पूजा, एक पिछाँणया तौ का दूजा।।
कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूँ मन लागा ।।" (92)

वे कहते हैं कि मैं हज काबे और तीर्थ यात्रा पर विश्वास नहीं करता। न मै व्रत रखता हूँ और न मैं मुहर्रम में विश्वास रखता हूँ। मैं तो केवल उसका स्मरण करता हूँ जो एकमात्र सत्य होने से अन्तत: अवशिष्ट रह जाता है। अर्थात जो माया एवं उसके सम्पूर्ण प्रपंच में लुप्त हो जाने के पश्चात अवशिष्ट रह जाता है। मैं न किसी देवता की पूजा करता हूँ और न मस्जिद में जाकर नमाज पढता हूँ। मैं तो एक निराकार परमात्मा को हृदय में धारण करके नमस्कार करता हूँ। मैं न हज [मक्का] जाता हूँ और न तीर्थों में जाकर पूजा ही करता हूँ। सब मैंने तो एक परम तत्व को पहचान लिया है, तब फिर अन्य किसी देवता अथवा किसी साधना की क्या आवश्यकता है। वे कहते हैं कि मेरे सब भ्रम नष्ट हो गये हैं और एक मात्र तत्व निरंजन में मेरा हृदय रम गया है।

तीर्थ और मूर्ति पूजन पर विश्वास करनेवाले शाक्तों पर वज्रघात करते हुए कहते हैं कि-

" तीरथ बरत जपै तप करि करि, बहुत भाँति हरि सोधै।
सकति सुहाग कहौ क्यूँ पावै, अछता कंत बिरोधै ।।" (93)

तीर्थ, व्रत, जप-तप, आदि विधि-विधानों से भगवान को खोजने का बहुत प्रयत्न किया परंतु सब व्यर्थ गया। कोई नारी अपने पति का विरोध करते हुए भला पति - मिलन, सौभाग्य-सुख प्राप्त नहीं कर सकती। इसलिए कबीर कहते हैं कि शाक्त उस असिम ब्रह्म को किस भाँति प्राप्त कर सकते क्योंकि वे मूर्ति पूजक है। और ब्रह्म का इस विधि-विधान से विरोध है।

इस संसार के शिवत्व के लिए कबीर ने मात्र राम सेवा और गुरु सेवा का ही महत्व स्पष्ट किया है - अन्य सब मिथ्या हैं, इस लिए निर्गुण निराकार की आराधना ही श्रेयस्कर है -

" जल कै मंजन्य जो गति होई, मीनाँ नित ही न्हावै।
जैसा मीनाँ तैसा नरा, फिरि फिरि जोनीं आवै ।।
मन मैं मैला तीर्थ न्हाँवै, तिनि बैकुंठ न जाँनाँ।
पाखण्ड करि करि जगत भुलाँनाँ , नाँहिंन रामँ अयाँनाँ।।" (94)

यहाँ कबीर ने स्पष्ट कहा है कि जल में स्नान मात्र करने से मुक्ति प्राप्त होती तो मछली नित्य ही जल में स्नान के कारण मुक्त हो गयी होती, किन्तु मीन और जीव दोनों ही स्नान से मुक्त नहीं हुए हैं इसलिए बार-बार आवागमन चक्र में पड विभिन्न योनियों में भ्रमित होते हैं। जो मन में कलुष रखते हुए तीर्थ-स्नान करता है, वह स्वर्ग लाभ नहीं करता। समस्त जगती पाखण्ड और ढोंग कर भ्रमित हो रहा है किन्तु प्रभु अज्ञानी नहीं है, वह सब कुछ देखता है उसी के चक्षु के सामने ही तुम समस्त कुकर्म करते हों। उससे कुछ भी अदृष्य नहीं है।

यह धार्मिक रूढिता विश्वास रूप में आज भी प्रतिष्ठित है जिसके कारण बहुत से लोग जीवन का अन्तिम समय बिताने के लिए काशी और प्रयाग जाते

हैं। उस युग में भी विश्वास इतनी दृढता से जमा हुआ था कि विरुद्ध रूप में उसका उल्लेख करते हुए साधक कबीर भी एक सीमा तक उससे प्रभावित हुए दृष्टिगोचर होते हैं -

" जोगी जती तपी संन्यासी, मठ देवल बसि परसैं कासी।।
तीन बार जे नित प्रति न्हावै, काया मींतरि खबरि न पावैं।।
देवल देवल फेरी देहीं, नाँव निरंजन कबहुँ न लेहीं।।
चरन बिरद कासै कौं न देहूँ, कहै कबीर भल नरकहिं जैहूँ।।"(95)

कबीर कहते हैं कि - योगी, तपस्वी, संन्यासी, मठों और मन्दिरों में रहते हैं। दिन में तीन बार गंगा स्नान करते हैं परन्तु अन्त:करण में विराजमान भगवान की ओर ध्यान नहीं देते। मन्दिरों में घूमते - फिरते हैं लेकिन निराकार ब्रह्म का नाम कभी नहीं लेते। वे कहते हैं कि [मोक्ष-प्राप्ति भगवान के चरणों की कृपा से संभव है] भगवान के चरणों का यह यश मैं काशी को कभी नहीं दूंगा, चाहे मुझे नरक में ही क्यों न जाना पड़े।

फिर भी कबीर का स्पष्ट विश्वास था कि यदि हृदय अपवित्र है तो वहाँ मरने से भी व्यक्ति नरकगामी होने से बच नहीं सकता -

" हिरदै कठोर मरै बानारसि, नरक न बंच्या जाई।
हरि कौ दास मरै जे मगहरि, सेन्यौं सकल तिराई। "(96)

कबीर कहते हैं कि जो लोग मन में निर्दयी है और काशी में रहते हैं, वे लोग नरक से नहीं बच सकते। भगवान का सच्चा भक्त अगर मगहर में भी मरना है तब भी उसकी पूरी सेना भी [उनके सब साथी भी] भव सागर के पार हो जाते हैं।

यही कारण है कि उन्होंने जीवन के अन्तिम क्षण काशी छोडकर मगहर में बिताकर अपनी दृढता का परिचय दिया। बाह्याचार में लीनता प्राय: व्यक्ति को अध्यात्मिकता के मूल उद्देश से दूर ले जाती है। काशी आदि तीर्थों से सम्बन्धित उनकी उक्तियों से ज्ञात होता है कि उनके सम्बन्ध में अन्धश्रद्धा

प्रतिष्ठित हो चुकी थी। जिसे प्रकाशित करते हुए कबीर कहते हैं कि-

" जोगी जती तपी संन्यासी, मठ देवल बसि परसैं कासी।" (97)

वहाँ बडे-बडे योगी और संन्यासी निस्पृह जीवन छोडकर मठों और देव मन्दिरों में रहकर तीन बार गंगा स्नान करते हैं किन्तु वे परमात्मतत्व की उपलब्धि की बात नहीं सोचते थे।

धर्म के अन्तर्गत [हिन्दु - मुस्लिम] आज भी लोग व्रत, उपवास, रोजा नमाज, हज आदि में विश्वास करते हैं। कबीर इसका विरोध करते हुए लोगों के अंधविश्वास को दूर करने का प्रयत्न करते हैं।

" रोजा करैं निमाज गुजारैं, क्या हज काबै जाँयें ।।
ब्रॉह्मण ग्यारसि करै चौबीसौं, काजी महरम जाँन।
ग्यारह मास जुदे क्यौं कीये: एकहि माँहि समाँन।।
जौर खुदाइ मसीति बसत है, और मुलिक किस केरा।
तीरथ मूरति रामँ निवासा, दुहु मैं किनहुँ न हेरा।।
पूरिब दिसा हरी का बासा, पछिम अलह मुकाँमा।
दिल ही खोजि दिलै दिल भीतरि, इहाँ रामँ रहिमाँनाँ।।
जेती औरति मरदाँ किहिये, सब मैं रूप तुम्हारा।
कबीर पंगुड़ा अलह रामँ का, हरि गुर पार हमारा।।" (98)

कबीर कहते हैं कि रोजा रखने, नमाज पढने तथा हज एवं काबे जाने से कोई लाभ नहीं है। ब्राह्मण वर्ष की चौबीसों एकादसियों को उपवास रखता है और काजी मोहर्रम के पूरे महिने भर इमाम हुसैन की शहादत के लिए शोक मनाता है। पर इनका क्या उपयोग है? रमजान के महीने को छोडकर शेष ग्यारह महीनों को अलग क्यों कर दिया ? सभी महीने समान होने के कारण सभी में धार्मिक कार्य करने चाहिए। अगर खुदा केवल मस्जिद में ही रहता है तो शेष समस्त संसार किसका है ? हिन्दुओं के अनुसार तीर्थों में और मूर्तियों में भगवान राम का निवास है। परन्तु उसके दर्शन तो दो धर्मों में से किसी ने भी नहीं किये है । हिन्दुओं के मतानुसार पूर्व दिशा में भगवान का निवास

है। मुसलमानों की राय में पश्चिम में अल्लाह का निवास स्थान है। इस प्रकार हिन्दु और मुसलमान दोनों भगवान को सर्वव्यापी नहीं मानते हैं। कबीर इनको सलाह देते हुए कहते है कि हे मानव ! तुम अपने हृदय को ही ढूंढों। वही तुम को राम और रहीम [ईश्वर और खुदा] दोनों के दर्शन हो जायेंगे। वे कहते हैं कि हे प्रभु । संसार में जितने भी नारी-पुरुष हैं, उन सबके भीतर तुम्हारा स्वरूप विद्यमान है अथवा वे सब तुम्हारे ही अव्यक्त रूप के व्यक्त रूप हैं। मैं तो राम ईश्वर और अल्लाह दोनों का ही दास हूँ। भगवान मेरे गुरु और पीर दोनों ही है ।

उपर्युक्त पद के द्वारा कबीर ने बाह्याचार की निरर्थकता और राम रहीम का प्रभेद बनाकर हिन्दु और मुस्लिम धर्म की एकता करने का प्रयास किया है ।

कबीर ने श्राद्ध आदि की बडी कटुता के साथ आलोचना की हैं। श्राद्ध आदि बाह्याडम्बर, अंधविश्वास केवल दंभ प्रेरित होते हैं। वे कहते हैं कि वेद और कुरान लौकिक आचरण का वर्तन करते हैं। इससे उनकी बातों को केवल लोकाचार कहा जाना चाहिए।

" जारि बारि करि आवै देहा, मूँवा पीछैं प्रीति सनेहा ।।
जीवत पित्रहि मारहि डंगा, मूँवा पित्र ले घालैं गंगा ।।
जीवत पित्र कूँ अन न ख्वावैं, मँवाँ पाछैं ष्यंड भरावैं ।।
जीवत पित्र कूँ बोलैं अपराध, मँघौ पीछै देहि सराध ।।
कहि कबीर मोहि अचिरज आवै, कऊवा खाई पित्र क्यूँ पावै।।" (99)

मनुष्य अपने संबंधियों के मृत शरीर को जला कर उसका चिह्न तक मिटा देते है और फिर उसके बाद रो-धोकर उसके प्रति अपनी प्रेम प्रकट करते हैं। पुत्र अपने जीवित पिता को लाठी से मारता है और मरने पर उसकी अस्थियों कों गंगा के जल में डालने के लिए पहुँचता है। जीवित पिता को तो भोजन भी नहीं देता है और मरने पर पिण्डदान का दिखावा करता है। जीते-जी पिता को अनेक दोष देता है, उसके प्रति कटु शब्द कहता है और मरने पर श्राद्ध के नाम पर श्रद्धा की अभिव्यक्ति का स्वांग करता है। कबीर कहते

हैं कि इन समस्त बाह्याडम्बरों को देख कर मुझे आश्चर्य होता है। कौअे श्राद्ध के जिस अन्न को खाते है, उसे पितृ-गण कैसे प्राप्त कर सकते है। यह सब अन्ध विश्वास का फल हैं।

इस प्रकार से कबीर ने बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। कबीर पूजा-आर्चा को अंधविश्वास मानते थे। तीर्थस्थानों में जाकर पूजा-आर्चा करने से ईश्वर की प्राप्ति असंभव है-

" कौन बिचारि करत हौ पूजा, आतम रांम अवर नहीं दूजा।।
बिन प्रतीतैं पाती तोड़ै, ग्यांन बिनाँ देवलि सिर फोड़ै।।"(100)

कबीर कहते हैं कि तुम क्या सोचकर देवी-देवताओं की पूजा करते हो ? आत्मा ही परमात्मा है। अन्य कोई दूसरा नहीं है, अथवा वह अन्य नहीं है। तुम भक्ति-भाव के बिना पत्तियाँ, फूल तोड-तोड कर चढाते हो और इस प्रकार की ज्ञान शून्य पूजा करके तुम व्यर्थ ही देवालय में अपना सिर फोडते हो ।

कबीर कालीन समाज रूढियों और अंधविश्वास में घुट रहा था और धार्मिक स्थापनाओं और मान्यताओं में दंभ का खोखलापन निहीत था। कबीर अन्दर और बाहर का सामंजस्य चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि लोग करें कुछ और कहें कुछ, इसलिए उन्हें सचेत करना पडा-

" कबीर काजी स्वादि बसि, ब्रह्म हतै तब दोइ।
चढि मसीति एकै कहे, दरि क्यँ साचा होइ।।" (101)

कबीर कहते हैं कि काजी जिस समय अपनी जिव्हा के स्वाद हेतु बकरे का हनन करता है तो वह यही समझकर मारता है कि ब्रह्म और जीव दोनों अलग हैं, यद्यपि वास्तव में वह बकरा भी ब्रह्म का ही रूप हैं किन्तु मस्जिद में खडे होकर जिस समय वह यह कहने लगता है कि अल्लाह एक है उस समय उसकी बात को सत्य कैसे माना जा सकता है ?

कबीर कहते हैं कि धर्म झूठ बोलता नहीं सिखलाता है। और जो झूठ

बोलना सिखलाता है वह धर्म नहीं है। धर्म का आचरण से सम्बन्ध अवश्य है किन्तु जिसमें आचरण का समझौता नहीं वह कैसा धर्म ? जो प्रार्थना सत्य को झूठ के गर्त में धकेलती है वह कैसी प्रार्थना ? इसलिए कबीर हमें सन्देश देते है -

" यहु सब झूठी बंदिगी, बरियाँ पंच निवाज।
साचै मारै झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज।।" (102)

अर्थात मुसलमानों का दिन में पाँच बार नमाज पढना और परमात्मा की प्रार्थना करते रहना सब व्यर्थ है क्योंकि तू उन कुरान की आयतों पर स्वयं तो आचरण नहीं करता और इस प्रकार कितना बडा अनर्थ करता है।

कबीर ने उन आचारों की निंदा की है जिनमें धर्म का कोई मूल तत्व विद्यमान नहीं है। और जहाँ प्रदर्शन को ही धर्म मान लिया गया है -

" करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि तूँड ।
जाँणै बूझै कुछ नहीं, यौं हीं आँधाँ रूँड ।।" (103)

बाह्य रूप से ही राम नाम की रट लगाने से कुछ नहीं होता जब तक हृदय से उसकी भक्ति नहीं होती हैं। अर्थात जो व्यक्ति राम नाम का कीर्तन बिना उसके महत्व को समझे हुए मुँह उठा - उठा कर ऊँचे स्वर से कहते हैं वह वास्तविकता तो कुछ नहीं जानते है अंधे रूंड के समान बिना सिर के शरीर के नीचे के भाग के समान इधर - उधर डोलते हैं।

कबीर के समय में बहुत से लोग मूर्ति-पूजा को ही धर्म मान बैठे थे । वे नहीं जानते थे कि उनका श्रम व्यर्थ हो रहा है। कबीर का इस विषय में स्पष्ट मत था कि मन की भ्रांति के निवारण में ही शीलता आती है। शालिग्राम की सेवा से शांति नहीं मिलती। इसमें न तो सहानुभूति है और न कोई शक्ति ही -

" सेवैं सालिगराँम कूँ, मन की भ्रांति न जाइ।
सीतलता सुपिनैं नहीं, दिन दिन अधकी लाइ।।" (104)

मन का भ्रम मूर्ति-पूजा से दूर नहीं हो सकता है। पत्थर की बनी हुई मूर्ति की पुजा करने की मन का भ्रम दूर नहीं हो सकता है। ऐसे मूर्ति पूजकों को स्वप्न में भी शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती है। दिन प्रति दिन अशान्ति की अग्नि और भी अधिक तीव्रता से प्रज्वलित होती है।

इस काल में कबीर के सामने एक और भी प्रश्न था कि अंध विश्वासियों ने ईश्वर की सत्ता केवल मन्दिर-मस्जिद में ही मान रखी थी। लेकिन हमे ऐसा लगता है कि कबीर को यह मानने में कोई अपत्ति नहीं होती कि परमात्मा मन्दिर-मस्जिद में भी है किन्तु वे यह मानने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं कि केवल मन्दिर, मस्जिद में ही है -

" कबीर दुनियाँ देहुरैं, सीस नवाँवण जाइ।
हिरदा भीतरि हरि बसै, तूँ ताही सौं ल्यौ लाइ।।" (105)

कबीर कहते है कि इस संसार के सभी व्यक्ति मन्दिर में ईश्वर का निवास समझकर वहाँ सिर झुकाने जाते हैं किन्तु प्रभु तो तेरे हृदय के भीतर ही निवास करते है तू उन्हीं से अपने प्रभु की लौ लगा उन्हीं की प्राप्ति का प्रयत्न कर।

कबीर का विश्वास था कि हृदय स्थित परमात्मा का ध्यान लगाने से ही परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है।

आवतारोपासना, छुआ-छुत, व्रतोध्यास, तीर्थस्थान, वेद-पाठ, कर्मकाण्ड आदि सबके विरुद्ध कबीर ने कहा है। आचार्य हजारी प्रसाद जी द्विवेदी का मत है कि - " इनकी गूढ व्याख्याओं को या इनकी पृष्ठभूमि के तत्व वाद को उल्लेख योग्य नहीं समझा। वस्तुत: सारा हिन्दु धर्म उनकी दृष्टि में एक बाह्याचार बहुत ढकोसला मात्र था। उन्होंने योग मात्र को भी ढकोसला ही समझा था। और हिन्दु-मत या तत्ववाद की ओर न तो उनकी वैसी जिज्ञासा ही है और न निष्ठा ही। " (106)

कबीर ने अपने पदों के द्वारा जीव - हत्या का बार - बार विरोध किया -

" कुकड़ी मारै बकरी मारै हक हक हक करि बोलै।
सबै जीव साँई के प्यारे, उबरहुगे किस बोलै।। " (107)

कबीर कहते है कि तू मुर्गी मारता है, बकरी मारता है और सत्य सत्य करके बोलता है अर्थात धर्म और ईश्वर की बाते बढ-बढ कर करता है। समस्त प्राणी स्वामी के प्यारे हैं इनकी हत्या करके तुम क्या बात बनाकर अपना उद्धार कर सकोगे ? अर्थात इनकी हत्या के दण्ड से अपने आप को बचा सकोंगे ? तुम्हारा हृदय पवित्र नहीं है तुमने पवित्र परमात्मा को नहीं पहचाना, उसकी खोज भी तुम नहीं कर पाए।

कबीर ने षट दर्शन को अनेक पाखण्डों के जनक तथा जन सामान्य को उनसे व्याकुल तथा अज्ञानी बताकर उनकी अन्धश्रद्धा तथा उनके नाम पर धार्मिक जगत् में फैले हुए आडम्बरों को निर्दिष्ट किया है -

" छह दरसन छयानवै पाषंड, आकुल किनहूँ न जानाँ।।
जप तप संजम पूजा अरचा, जोतिग जग बौरानाँ। "
कागद लिखि लिखि जगत भुलानाँ, मनहीं मन न समानाँ।।" (108)

अर्थात षट दर्शनों एवं विविध शास्त्रों [जिन्हें कबीर मात्र पाखण्ड मानते हैं] में प्रभु की खोज में व्यग्रतापूर्वक बडे प्रयत्न किये गये हैं। परन्तु कोई भी उस परम पिता को ठीक तरह से जान नहीं पाया। उसी को जानने के लिए संसार जप नियम-संयम पूजा-अर्चना, जोतिष आदि विभिन्न कामों में पागल हो रहा है। उसके निरूपण में ग्रन्थ के ग्रन्थ लिखकर लोग मन ही मन फूले नही समाते हैं परंतु वे सब इधर उधर ही भटक रहे हैं। इनमें किसी को भी वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं हैं।

काजी और मुल्लाओं की धूर्तता पर व्यंग्योंक्ति एवं कटूक्ति करते हुए कबीर उनके अन्धश्रद्धा का परिज्ञान कराकर, एकमात्र राम की भक्ति करने के लिए उपदेश देते है -

" काजी कौन कतेब बषाँनैं।।

पड़त पढ़त केते दिन बीते, गति एकै नहीं जाँनै। "(109)

वे कहते हैं कि हे काजी! क्यों व्यर्थ कुरान के पाठ के चक्कर में पड़े हुए हो ? इसका पाठ करते करते तुम्हे न जाने कितना समय व्यथीत हो गया किन्तु तुम अब भी प्रभु की महिमा से परिचित नहीं हो सके। उनको फिर उनकी अबोधता की ओर दृष्टि ले जाते हैं और कहते हैं -

" छाडि कतेब करौं कहि काजी, खून करत हौ भारी।
पकरी टेक कबीर भगति की, काजी रहे झष भारी।।"(110)

हे मुल्ला ! तुम कुरान आदि धर्म ग्रंथो को छोड और राम नाम का जप कर। इससे अन्यथा करने पर तुम भारी अन्याय कर रहे हो। कबीर कहते हैं कि मैंने तो भक्ति का दृढ सम्बल प्राप्त कर लिया है।

इस तरह से कबीर ने अंधविश्वास के संदर्भ में अपने मौलिक विचार व्यक्त किये हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास में कबीर से बडा मानवतावादी कोई नहीं हुआ। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित समस्त अंधविश्वासों, रूढियों तथा मिथ्या आडम्बरों द्वारा प्रचारित सामाजिक विषमताओं को समूल नष्ट करने का बीडा उठाया और निर्भयतापूर्वक सभी पाखण्डों पर अपनी कटु वाणी द्वारा प्रहार किया। उन्होंने तत्कालीन सामन्तों तथा शासकों को लक्ष्य कर ऐसी अनेक बातें कही है जिनसे भौतिक ऐश्वर्य पर आधारित झूठे अभिमान का समूल नाश हो।

निष्कर्ष :-
======

भारतीय चिन्तन और साधना के क्षेत्र में कबीर का स्थान अद्वितीय है। कबीर केवल भक्त और कवि ही न थे, वे एक प्रमुख विचारक, दार्शनिक, साधक तथा तत्ववेत्ता भी थे। वे दीन हीनों के हिमायती समाज सुधारक तथा सामाजिक नेता भी थे।

कबीर मनुष्य मात्र को समान समझते थे। अत: वे जहाँ भी वह भेद-

पूर्ण आचरण देखते थे वहीं अपना विरोध व्यक्त कर देते थे। कबीर हिन्दु और मुसलमान के बीच कोई भेद भाव नहीं मानते थे। इस लिए उन्होंने दोनों धर्मावलम्बियों में धर्म के नाम पर प्रचलित भ्रमपूर्ण बाहयाडम्बरों को दूर करने का प्रयत्न किया। हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था उनकी नजर में मानव विरोधी थी, क्योंकि वह मानव - मानव के बीच भेद भाव निर्माण करती हैं। यदि ईश्वर को मानव समाज की विषमता स्वीकार होती तो उसने इतने प्राणियों की भाँति उनकी उत्पत्ति की प्रक्रियाओं को भिन्न बनाया होता।

कबीर जातिवाद, ऊँच नीच की भावना तथा दिखावटी धार्मिक क्रिया कलापों के घोर विरोधी है। उन्होंने अपने साखियों और पदों में अनेक स्थानों पर हिन्दु धर्म और इस्लाम धर्म के कुछ क्रिया-कलापों का विरोध किया है। और यह कहा है कि यह न तो मौलिक है और न किन्ही व्यापक सिद्धान्तों के ही आश्रित है। लेकिन इन्हीं के कारण दोनों धर्मों के अनुयायियों में वैमनस्य दिखाई देता है।

कबीर धर्म के नाम पर प्रचलित दम्भ एवं कपट को देखकर दु:खी होते हैं। इसी कारण उन्होंने विविध सम्प्रदायों का खण्डन करके उन्हें सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया। कबीर ने सभी धर्मों की मूलभूत एकता को स्वीकार करते हुए धर्म के नाम पर होने वाले पारस्पारिक विरोध की तीव्र भर्त्सना की हैं। कबीर ने परम्परागत रूढियों आडम्बरों, अंधविश्वासों और अनुपयोगी रीति रिवाजों का कटट्र विरोध किया। कबीर हिन्दुओं की मूर्ति पूजा व्रत-उपवास तीर्थस्थान, जप-तप, छूत-अछूत, श्राद्ध, संध्या, गायत्री, आदि का विरोध करते हैं। मुस्लिम समाज में फैले हुए आडम्बरों के भी कबीर उतने ही विरोधी हैं, जितने की हिन्दुओं के। उन्होंने मुसलमानों के सुन्नत हज, अजान, कुरबानी, हलाल की भी खिल्ली उड़ाई हैं। इस बाहयाडम्बरों को दूर कर देने से धर्म भेद के सभी झगडे दूर हो जायेगें और धर्म भेद ही नहीं रहेगा। कबीर धर्म को आडम्बर से परे एकमात्र सत्य सत्ता मानते थे, जिसके हिन्दु और मुसलमान आदि भेद, विभाग नहीं हो सकते। इस तरह

से कबीर ने लोगों को धर्म के यथार्थ स्वरूप को पहचानने तथा उसके अनुसार आचरण करने के लिए कहा है।

कबीर का युग अंधानुकरण एवं अंध विश्वास का था। लोग धर्म का पालन हृदय से नहीं, भय से किया करते थे। इसलिए कबीर ने बाह्याडम्बरों, मिथ्याचारों पर करारा व्यंग्य किया और उनका खण्डन भी किया। साथ ही समाज में सात्विकता और आचरण - प्रवणता का प्रचार किया।कबीर कालीन लोग नाना प्रकार के अंधविश्वासों में फँस कर हीन जीवन व्यतीत कर रहे थे। कबीर ने इन लोगों को इसी से मुक्त करने का प्रयत्न किया। उन्होंने हिन्दुओं के श्राद्ध एकादसी तीर्थव्रत, मंदिर, पूजा-पाँठ आदि का विरोध किया तो मुसलमानों के रोजा, नमाज, हज, कुरबानी, अजान, आदि का भी घोर विरोध किया। कबीर ने कर्मकाण्ड की बहुत निंदा की है। बाह्याडम्बर, पाखण्ड के लिए उन्होंने हिन्दु-मुसलमान दोनों के खूब फटकारे सुनाई हैं।

इस तरह से कबीर अपने समय के सबसे अधिक प्रखर एवं स्पष्टवक्ता है। उन्होंने बडी निर्भीकता के साथ धार्मिक क्षेत्र में प्रवर्तित बाह्याचार मूलक अन्धविश्वासों, रूढ़ियों और पाखण्डों का खण्डन किया। उनका विश्वास था कि ईश्वर - भक्ति के मार्ग में मिथ्या कर्मकाण्ड, पाखण्ड के लिए कोई स्थान नहीं है।

इन सारी बातों को देखने के पश्चात यह स्पष्ट होता हैं कि कबीर जन्मजात विद्रोही कवि थे। उनमें अदम्य साहस और अखण्ड आत्म-विश्वास था। कबीर एक भक्त, समन्वयवादी, युगद्रष्टा और समाज - सुधारक थे।

****

:- संदर्भ सूची -:

संदर्भ क्रमांक	लेखक	रचना	प्रकाशक-काल	पृष्ठ
1.	सं. रामचंद्र वर्मा	मानक हिंदी कोश [पाँचवा खण्ड]	हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग प्रथम संस्करण - 1966 ई.	64
2.	डॉ. श्यामसुंदरदास	हिंदी शब्द सागर[नवाँ भाग]	काशी नागरी प्रचारिणी सभा, नवीन संस्करण 1970 ई.	4484
3.	सं. श्री. नवलजी	नालन्दा विशाल शब्द सागर	आदीश बुक डेपो, दिल्ली- 4 संस्करण - 1988.	1268
4.	डॉ. रामचंद्र तिवारी	कबीर मीमांसा	लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद- 1 प्रथम संस्करण सन- 1976.	157/58
5.	डॉ. पारसनाथ तिवारी	कबीर वाणी संग्रह	राका प्रकाशन इलाहाबाद- 2 पंचम संस्करण- 1975.	70
6.	डॉ. गोविंद त्रिगुणायत	कबीर की विचार-धारा	साहित्य निकेतन, कानपुर-1 तृतीय संस्करण श्रवणी संवत 2024	333
7.	डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी पंद्रहवाँ संस्करण सं. 2041 वि.	79
8.	डॉ. रामलाल वर्मा/ डॉ. रामचंद्र वर्मा	युगपुरुष कबीर	भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली- 6 प्रथम संस्करण-1978.	164

संदर्भ क्रमांक	लेखक	रचना	प्रकाशक-काल	पृष्ठ
9.	डॉ. भोलानाथ तिवारी	कबीर और उनका काव्य	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली अप्रेल-1961.	61
10.	डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी पंद्रहवाँ संस्करण सं. 2041 वि.	82
11.	तदैव	-"-	-"-	42
12.	तदैव	-"-	-"-	37
13.	तदैव	-"-	-"-	185
14.	तदैव	-"-	-"-	82
15.	तदैव	-"-	-"-	155
16.	तदैव	-"-	-"-	?
17.	तदैव	-"-	-"-	79
18.	तदैव	-"-	-"-	83
19.	तदैव	-"-	-"-	83
20.	तदैव	-"-	-"-	158
21.	तदैव	-"-	-"-	113
22.	तदैव	-"-	-"-	66
23.	तदैव	-"-	-"-	66
24.	तदैव	-"-	-"-	57
25.	डॉ. रामलाल वर्मा/ डॉ. रामचंद्र वर्मा	युगपुरुष कबीर	भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली- 6 प्रथम संस्करण- 1978.	131
26.	तदैव	-"-	="-	183

संदर्भ क्रमांक	लेखक	रचना	प्रकाशक-काल	पृष्ठ
27.	डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी पंद्रहवाँ संस्करण सं. 2041. वि.	83
28.	तदैव	-"-	-"-	82
29.	तदैव	-"-	-"-	83
30.	तदैव	-"-	-"-	131
31.	तदैव	-"-	-"-	84
32.	आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी	कबीर	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पटना छटा संस्करण 1988.	158
33.	डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी पंद्रहवाँ संस्करण सं. 2041. वि.	181
34.	तदैव	-"-	-"-	152
35.	तदैव	-"-	-"-	163
36.	डॉ. पारसनाथ तिवारी	कबीर वाणी संग्रह	राका प्रकाशन इलाहाबाद-2 पंचम संस्करण- 1975	70
37.	प्रभाकर माचवे	कबीर	साहित्य अकादेमी नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1984.	30/31
38.	डॉ. रामचंद्र तिवारी	कबीर मीमांसा	लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद- 1 प्रथम संस्करण सन- 1976.	131
39.	डॉ. श्यामसुंदर-दास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी पंद्रहवाँ संस्करण सं. 2041 वि.	129

संदर्भ क्रमांक	लेखक	रचना	प्रकाशक-काल	पृष्ठ
40.	डॉ. राजेंद्रमोहन भटनागर	कबीर	भारतीय ग्रंथ निकेतन, दरियागंज नई दिल्ली- वर्ष- 1985.	41
41.	डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी पंद्रहवाँ संस्करण सं. 2041 वि.	34
42.	तदैव	-"-	-"-	34
43.	तदैव	-"-	-"-	116
44.	तदैव	-"-	-"-	34
45.	तदैव	-"-	-"-	34
46.	तदैव	-"-	-"-	35
47.	डॉ. भोलानाथ तिवारी	कबीर जीवन और दर्शन	साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद- 3 प्रथम संस्करण- 1978.	100
48.	डॉ श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी पंद्रहवाँ संस्करण सं. 2041 वि.	36
49.	तदैव	-"-	-"-	35
50.	तदैव	-"-	-"-	36
51.	तदैव	-"-	-"-	18
52.	तदैव	-"-	-"-	100
53.	तदैव	-"-	-"-	136
54.	तदैव	-"-	-"-	154
55.	तदैव	-"-	-"-	100
56.	तदैव	-"-	-"-	29

संदर्भ क्रमांक	लेखक	रचना	प्रकाशक-काल	पृष्ठ
57.	डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी ग्यारहवाँ संस्करण सं. 2027 वि.	20
58.	तदैव	-"-	-"-	36
59.	तदैव	-"-	-"-	38
60.	तदैव	-"-	-"-	37
61.	तदैव	-"-	-"-	136
62.	तदैव	-"-	-"-	132
63.	तदैव	-"-	-"-	77
64.	तदैव	-"-	-"-	78
65.	तदैव	-"-	-"-	30
66.	तदैव	-"-	-"-	79
67.	आ. हजारी प्रसाद दविवेदी	कबीर	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पटना छटा संस्करण- 1988	158
68.	डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी ग्यारहवाँ संस्करण सं. 2027 वि.	36
69.	डॉ. सावित्री शुक्ल/ डॉ. चतुर्वेदी	कबीर ग्रंथावली	प्रकाशन केंद्र लखनौ- 7	513
70.	डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी ग्यारहवाँ संस्करण सं. 2027 वि.	36
71.	तदैव	-"-	-"-	36
72.	-"-	-"-	-"-	80

संदर्भ क्रमांक	लेखक	रचना	प्रकाशक-काल	पृष्ठ
73.	डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी ग्यारहवाँ संस्करण सं. 2027 वि.	67
74.	तदैव	-"-	-"-	35
75.	तदैव	-"-	-"-	156
76.	तदैव	-"-	-"-	83
77.	तदैव	-"-	-"-	182
78.	तदैव	-"-	-"-	79
79.	डॉ. सावित्री शुक्ल/ डॉ. चतुर्वेदी	कबीर ग्रंथावली	प्रकाशन केंद्र लखनौ-7	395
80.	डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी ग्यारहवाँ संस्करण सं. 2027 वि.	84
81.	तदैव	-"-	-"-	33
82.	तदैव	-"-	-"-	83
83.	डॉ. भोलानाथ तिवारी	कबीर जीवन और दर्शन	साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद-3 प्रथम संस्करण 1978	100
84.	तदैव	-"-	-"-	100
85.	आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी	कबीर	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पटना छटा संस्करण -1988	143
86.	डॉ. भोलानाथ तिवारी	कबीर और उनका काव्य	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली अप्रैल- 1961.	125

संदर्भ क्रमांक	लेखक	रचना	प्रकाशक-काल	पृष्ठ
87.	डॉ. रामलाल वर्मा/ डॉ. रामचंद्र वर्मा	युगपुरुष कबीर	भारतीय ग्रंथ निकेतन दिल्ली - 6 प्रथम संस्करण- 1978.	182
88.	डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी ग्यारहवाँ संस्करण सं. 2027 वि.	39
89.	तदैव	-"-	-"-	35
90.	तदैव	-"-	-"-	35
91.	तदैव	-"-	-"-	35
92.	तदैव	-"-	-"-	152
93.	तदैव	-"-	-"-	146
94.	तदैव	-"-	-"-	153
95.	तदैव	-"-	-"-	139
96.	तदैव	-"-	-"-	153
97.	तदैव	-"-	-"-	139
98.	तदैव	-"-	-"-	131
99.	तदैव	-"-	-"-	156
100.	तदैव	-"-	-"-	100
101.	तदैव	-"-	-"-	33
102.	तदैव	-"-	-"-	33
103.	तदैव	-"-	-"-	30
104.	तदैव	-"-	-"-	34
105.	तदैव	-"-	-"-	35
106.	आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी	कबीर	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पटना छटा संस्करण-1988.	130

संदर्भ क्रमांक	लेखक	रचना	प्रकाशक-काल	पृष्ठ
106.	आ. हजारी प्रसाद	कबीर	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पटना, छटा संस्करण - 1988.	130
107.	डॉ. श्यामसुंदरदास	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारीणी सभा वाराणसी ग्यारहवाँ संस्करण सं. 2027 वि.	84
108.	तदैव	-"-	-"-	77
109.	तदैव	-"-	-"-	83
110.	तदैव	-"-	-"-	83

****

ARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR